# बुनियादी शिक्षा

## एक नई कोशिश

अगस्त–अक्टूबर, 2008

अंक – 20

दीवार का उपयोग

# बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश

## अंक–20

**परामर्श**
हृदय कांत दीवान
सुदर्शन आयंगार

**संपादक**
के. आर. शर्मा

**सलाहकार**
एम.पी. शर्मा
भागचंद्र कुमावत
गोविन्द रावल
प्रवीण डाभी
भरत जोशी
सुधा भण्डारी

**संपादन सहयोग**
कुमार अनुपम

**कंप्यूटर सेटिंग**
इसरार अहमद

**संपादकीय पता**
विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र
फतेहपुरा, मोहनसिंह मेहता मार्ग
उदयपुर (राज.) 313 004
फोन : (0294) 2451497
Email : vbsudr@yahoo.com

मुद्रक : संजय प्रिन्टर्स, उदयपुर

## इस अंक में

**चिट्ठी पत्री** 2

(1) शिक्षा कैसी हो? 4

(2) संपादकीय 11

(3) बहस के लिए 13

(4) साझेदारी का बदलता स्वरूप 14
*हृदय कांत दीवान*

(5) बुनियादी शिक्षा : एक विश्लेषण 22
*साधना सक्सेना*

(6) जीवन के लिए शिक्षा 27
*मरिया मांटेसरी*

(7) शिक्षा में सृजनात्मकता एवं सौन्दर्यबोध 29
*वि.वि. सिंह*

(8) श्रम जगत् की यात्राएं 33
*वसीली सुख़ोम्लीन्स्की*

(9) लैब एरिया विद्यालयों में अर्थपूर्ण शिक्षा 35
*द्वारिका प्रसाद नागदा*

(10) स्कूल की दीवार के बहाने 37
*कुमार अनुपम*

(11) शिक्षक की डायरी 40
*हेमराज भट्ट*

(12) विद्या भवन और बुनियादी शिक्षा 46
*के.आर. शर्मा*

**आवरण चित्र** : के.आर. शर्मा

इस पत्रिका में उपयोग किया गया कागज़ विद्या भवन बुनियादी माध्यमिक विद्यालय, रामगिरि में स्थित कागज़ यूनिट में तैयार किया गया है।

**सहयोग राशि : 20 रुपए**

सौजन्य : सर रतन टाटा ट्रस्ट, मुंबई एवं राष्ट्रीय ग्रामीण संस्थान परिषद् (NCRI) हैदराबाद

# चिट्ठी–पत्री

''बुनियादी शिक्षा'' का अंक 19 प्राप्त हुआ, धन्यवाद। इसके चित्र, लेआउट और सामग्री बेहतरीन हैं। विशेषरूप से हस्तनिर्मित काग़ज़ के इस्तेमाल से एकरंगी लाइन–स्केच बेहद उभरकर आए हैं। चार साल के बच्चे के सीखने की क्षमता, प्रक्रिया पर आलेख प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षकों के साथ–साथ पालकों के लिए भी मार्गदर्शक है।

एक सुझाव भी है, जान हाल्ट का पीछा छोड़ दें, हमारी सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियां यूरोप से बिल्कुल अलग हैं, हमारे विद्यालय और शिक्षक अलग तरह की दिक़्क़तों को झेलते हैं। गिजुभाई, मोदक ताई, देशमुख ताई, कोठारीजी, यशपाल, कृष्ण कुमार जैसे कई शिक्षाविद् हमारे देश में भी हैं। इससे भी आगे नवाचार के कई प्रयोग हमारे देश में चल रहे हैं।

बुनियादी शिक्षा पर गांधी, जाकिर साहब के विचार भी प्रासंगिक हो सकते हैं। वैसे मैं जानता हूं कि सुझाव देना सरल है, लेकिन आप जिस तरह का व्यापक कार्य कर रहे हैं उसको देखते हुए पत्रिका भी अनूठी व संग्रहणीय है। मेरी शुभ कामनाएं। देश में चल रहे विभिन्न प्रयोगों–दिगंतर, ऋषिवैली आदि पर एक पुस्तक पर भी विचार करें तो अच्छा होगा।

**पंकज चतुर्वेदी**
सहायक संपादक,
नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया
नयी दिल्ली

''बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश'' का 19वां अंक मिला। यह अंक काफी अच्छा लगा। शिक्षा के व्यापक सरोकारों से जुड़े चिंतनशील लोगों के लिए यह अंक पठनीय होने के साथ–साथ संग्रहणीय भी है।

वैसे तो अंक में छपे सभी लेख अच्छे हैं लेकिन यहां कुछ के बारे में अपनी बात आपके पास पहुंचा रहा हूं। आपने इस अंक में कार्यशालाओं में किए गए काम की रिपोर्ट प्रकाशित की है जो किए गए काम का जीवन्त वर्णन करती है। इन कामों पर अनुभव भी शामिल करते तो अधिक मदद मिलती।

पत्रिका में हृदय कान्त दीवान का लेख 'शिक्षा में समुदाय की भागीदारी के मायने' पाठक को शिक्षा में समुदाय की सार्थक भागीदारी के रास्ते सुझाता है जिससे हम शिक्षा में समुदाय के क़दम ज़्यादा भागीदारी की ओर आकर्षित कर सकेंगे। शिक्षा से जुड़े लोगों के लिए यह लेख काफ़ी मददगार साबित होगा।

के.आर. शर्मा ने 'बच्चे, भाषा और शिक्षा' के माध्यम से वर्तमान में हो रहे स्कूली काम में तकनीकी की भरमार को व्यंग्य चित्र से दर्शाया है जो क़ाबिले तारीफ़ है। शिक्षकों के साथ इन चित्रों के आधार पर चर्चाएं की जा सकती हैं।

'शहनाज़ की डायरी' का अंश शिक्षिका को सक्रिय कक्षा बनाने में व बच्चों को बेहतर तरीक़े से सीखने–सिखाने में शिक्षक द्वारा डायरी लेखन के महत्त्व को उजागर करती है।

अजय बंग के लेख को पढ़ने के बाद मेरे दिमाग़ में लगातार एक सवाल आ रहा है कि ऐसा क्यों है? हमारी इच्छा तो अपने बच्चे को ऐसे जादुई स्कूल में भेजने की होती है। लेकिन हम स्वयं ऐसा स्कूल क्यों नहीं बनाते या ऐसी राह पर चल रहे स्कूल को विकसित करने में सहयोग क्यों नहीं करते हैं? क्या हम भी समाज की स्वार्थ और स्पर्धा की लहरों से घबरा गए हैं? मुझे तो लगता है हमें एक जुट होकर ऐसे प्रयास करने होंगे।

आशा है इस पत्रिका के अगले अंक भी आप मुझे भेजते रहेंगे।

**वीरेन्द्र शर्मा**
फैकल्टी सदस्य
क्वालिटी एजुकेशन प्रोग्राम बारां (राज.)

# शिक्षा कैसी हो?

**विद्या भवन सोसायटी द्वारा बुनियादी शिक्षा को आज के संदर्भ में पुनर्भाषित कर इसको अन्य संस्थाओं में लागू करने के प्रयास किए जा रहे हैं। यह तो साफ ही है कि बुनियादी शिक्षा को सर्वसाधारण की शिक्षा बनानी है तो शासकीय तंत्र के साथ जमकर काम करना होगा। इस लिहाज़ से हमने डाइट के साथ काम करने की योजना बनाई। इस कड़ी में हम राजस्थान, बिहार एवं छत्तीसगढ़ की चुनी गई डाइट्स के साथ बुनियादी शिक्षा को लेकर संवाद कर रहे हैं। पिछले दिनों हमने राजस्थान में बांसवाड़ा ज़िले की गढ़ी डाइट में बुनियादी शिक्षा पर दो दिवसीय कार्यशाला का आयोजन किया। कार्यशाला के एक सत्र में हमने पूर्व सेवाकालीन छात्रों से बुनियादी शिक्षा बनाम अर्थपूर्ण शिक्षा को लेकर उनके विचार जानने की कोशिश की। यहां प्रस्तुत है डाइट गढ़ी के पूर्व सेवाकालीन छात्रों के विचार–**

## बच्चे को समझना होगा

शिक्षा जीवन का महत्त्वपूर्ण अंग है। हमारी यह इच्छा या आकांक्षा रहती है कि अपने सभी कार्यों को बेहतर बनाएं। इसी सदंर्भ में बेहतर शिक्षा की बात आती है। हम देखते हैं तीन या चार साल के बच्चों को हम घर पर बोलना सिखा सकते हैं तथा कुछ शब्द लिखना भी सिखा सकते हैं। परन्तु विद्यालय में जाकर एक बालक काफ़ी समय के बाद भी यह नहीं सीख पाता है। इसका प्रमुख कारण विद्यालय का वातावरण है जो घर से बिल्कुल विपरीत होता है। स्कूल में स्वतंत्रता का अभाव होता है। यहां आवश्यक वस्तुएं नहीं उपलब्ध हो पाती हैं।

उदाहरण के लिए उस समय की बात है जब मैं सातवीं कक्षा में पढ़ता था तब हमारे बांसवाड़ा शहर में मोबाइल आए थे। हमारे गुरुजी के पास भी एक मोबाइल था। एक बार मैंने तथा मेरे एक मित्र ने गुरुजी से पूछा कि यह मोबाइल कैसे चलता है? तब उन्होंने मुझसे तथा मेरे मित्र को कहा कि चल बैठ जा। वो मोबाइल लेकर चले गए वहां से। तब हमें यह बात अच्छी नहीं लगी।

इस बात से यह आशय निकलता है कि विद्यालय में छात्रों की इच्छाओं को पूरा नहीं किया जाता। इससे छात्र अन्य बातों को जानने की इच्छा का त्याग कर देते हैं।

अतः बेहतर शिक्षा के लिए विद्यालय में पढ़ानेवाले अध्यापकों का व्यवहार माता–पिता के समान होना चाहिए ताकि छात्र अपने मन की बातें गुरुजी के सामने रख सकें तथा गुरुजी उसे अपने अनुभवों के आधार पर हल करें।

मेरा यह भी मानना है कि यदि छात्रों में व्यावहारिकता आए तो कई हद तक उनकी शिक्षा बेहतर होगी।

**अज़हर खान**
बी.एस.टी.सी., प्रथम वर्ष
डाइट गढ़ी

# बालकेन्द्रित शिक्षा

शिक्षा अच्छी तब हो सकती है जब वह बालकेन्द्रित हो।

गिजुभाई के अनुसार –''बालक तब तक शिक्षा प्राप्त नहीं करता जब तक उसे बाहरी वातावरण में या खेल द्वारा शिक्षा नहीं दी जाती'' अर्थात् बालक को व्यावहारिक शिक्षा देनी चाहिए। इसी से बालक का सर्वांगीण विकास होता है। बालक अपने भावों को स्वतंत्र रूप से अभिव्यक्त कर सके वही अच्छी शिक्षा है।

वर्तमान में शिक्षा व्यवस्था अप्रासंगिक होती जा रही है इसका मुख्य कारण है शिक्षा व्यवस्था का बिगड़ना। इस बिगड़ती शिक्षा के सुधार हेतु बुनियादी शिक्षा को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

इस हेतु हमें निम्न उपाय करने चाहिए–

- खेल–खेल में शिक्षण।
- बाह्य वातावरण में शिक्षा।
- रुचि आधारित शिक्षा।
- सहायक सामग्री द्वारा शिक्षा।
- विभिन्न प्रयोगों द्वारा शिक्षा।
- विचारों के आदान–प्रदान द्वारा शिक्षा।
- कौशलों को विकसित करने की दृष्टि से शिक्षा।

**रीना बयोला,** बी.एस.टी.सी., द्वितीय वर्ष, डाइट गढ़ी

## बुनियादी शिक्षा

जीवन की बुनियादी है, बुनियादी शिक्षा
जीने की राह है, बुनियादी शिक्षा
स्वावलम्बन की सीख है, बुनियादी शिक्षा
गांधी का वरदान है, बुनियादी शिक्षा
भारत की मांग है, बुनियादी शिक्षा
विकास का आधार है, बुनियादी शिक्षा
सृजनता का सार है, बुनियादी शिक्षा
सेवा से सराबोर है, बुनियादी शिक्षा
हर जन की चाह है, बुनियादी शिक्षा
व्यक्तित्व का विकास है, बुनियादी शिक्षा
कृत्तित्व की निष्ठा है, बुनियादी शिक्षा
परोपकार का पाठ है, बुनियादी शिक्षा
सीखने का कौशल है, बुनियादी शिक्षा
सम्पन्नता का स्वरूप है, बुनियादी शिक्षा
व्यक्ति का विश्वास है, बुनियादी शिक्षा
जीवन की बुनियाद है, बुनियादी शिक्षा
जीवन की राह है, बुनियादी शिक्षा

**भूपेन्द्र सिंह राव**
बी.एस.टी.सी., द्वितीय वर्ष
डाइट गढ़ी

## शिक्षा जो सोई आंखों को जगा दे...

बुनियादी शिक्षा वह शिक्षा है
जो नींव को बना दे,
सोई आंखों को जगा दे
सिर्फ़ शिक्षा देना ही मक़सद नहीं,
मक़सद है करके सिखाना।
ये शिक्षा है बच्चों के
जीवन की बुनियाद को बनाने की
यह शिक्षा है गांधी के विचारों की
यह भावना है बच्चों के विकास की।।

**कोमल जैन**
बी.एस.टी.सी., द्वितीय वष
डाइट गढ़ी

# करके सीखना

अच्छी शिक्षा ऐसी हो जिसे बार–बार रटने की आवश्यकता न हो। सरल व सुन्दर ढंग से सभी स्तर के बालकों को समझ में आ जाए। अच्छी शिक्षा आस–पास के परिवेश से लेकर विश्व स्तर तक दी जाए ताकि बालक बुलंदियों को छू सके। शिक्षा बालक में आत्मविश्वास बढ़ाए, सोचने की शक्ति का विकास करे, कार्य करके देखने का विकास करे, प्रश्न करने की शक्ति का विकास करे। अच्छी शिक्षा वह है जो बालक को बदलते परिवेश से जोड़े। अच्छी शिक्षा वह है जो व्यावहारिक जीवन से जुड़े।

पाठ्यक्रम सभी स्तर के बालकों की रुचि को ध्यान में रखकर बनाया जाए जिसमें प्रत्येक बालक की रुचि हो जैसे–

– कोई शिक्षक बनना चाहता है।
– कोई डॉक्टर बनना चाहता है।
– कोई चित्रकार बनना चाहता है।
– कोई व्यवसाय से जुड़ना चाहता है।
– कोई मूर्तिकार बनना चाहता है।
– कोई इंजिनियर बनना चाहता है आदि।

वर्तमान पाठ्यक्रम तरीका सरासर ग़लत है। जहां प्रयोग की आवश्यकता है वहां भी व्याख्या की जाती है। बालकों को अधिक से अधिक प्रयोग करने के मौके मिलने चाहिए। विद्यालयों में ''करके सीखने'' के सिद्धान्त को लागू करना चाहिए।

स्वतंत्रता सेनानी व हमारे राष्ट्रपिता मोहनदास करमचन्द गांधीजी के तीन H Head, Hand, Heart का प्रयोग विद्यालय में अपनाए जाएं जिससे बालक के मन में ज्ञान का स्थायी भण्डार हो सके।

**कलावती सालवी**
बी.एस.टी.सी., प्रथम वर्ष
डाइट गढ़ी

# शिक्षा ऐसी हो जिसके ज़रिए बच्चे को नया रचने का मौक़ा मिले

सामान्यतया शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो बच्चों को तथा व्यक्ति को कुछ कार्य करने के लिए तत्पर करें। शिक्षा के द्वारा बालक या व्यक्ति कुछ नया कार्य कर सके। शिक्षा ऐसी हो जो बालक के स्थानीय परिवेश से जुड़ी हुई हो, जो बालक को अपने परिवेश को जानने एवं समझने की शक्ति प्रदान करे। शिक्षा ऐसी हो जो मानव तथा व्यक्ति के व्यवहार का निर्धारण कर उसे उचित दिशा–निर्देश प्रदान करे। शिक्षा ऐसी हो जो बालक/बालिका को नवीन पथ की ओर अग्रसर करे। शिक्षा के माध्यम से स्वावलम्बन के गुण को अपनाकर जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपने व्यवहार में स्वावलम्बन का परिचय दे। शिक्षा ऐसी हो जो बालक को नवीन कार्य एवं हस्त कौशल की ओर अग्रसर करे जो बालक के भावी जीवन के लिए उपयोगी बने तथा जीवन के हर क्षेत्र में वह उपयोगी सिद्ध हो। अच्छी शिक्षा उसे भी हम कह सकते हैं जो बालक/बालिका के जीवन से जुड़ी नवीन या पुरानी समस्याओं का हल करने में सहायक हो। शिक्षा ही वह गुणधर्म है जो व्यक्ति को सभ्य एवं कर्तव्यनिष्ठ बना सकती है।

शिक्षा रोज़गारोन्मुखी होनी चाहिए। व्यक्ति को विभिन्न कौशल का ज्ञान प्राप्त कर वह कुछ रोज़गार प्राप्त करें।

शिक्षा ऐसी हो जो बालक/बालिका के स्थानीय परिवेश से जुड़ी हो, जो बच्चे में नवीन ज्ञान का संचार अध्यात्म की ओर

ओर अग्रसर करे। अच्छी शिक्षा ऐसी जो सर्वांगीण विकास करे। जो जीवन के हर क्षेत्र में काम आए।

शिक्षा ऐसी हो जो बच्चे एवं व्यक्ति को प्रायोगिक कार्य करने के प्रति प्रेरित करे। शिक्षा विभाग द्वारा ऐसी पाठ्यपुस्तकों का निर्माण किया जाए जिसमें बच्चे एवं व्यक्ति काम करके शिक्षा प्राप्त करने के अवसर हों।

**अनेश्वर राठौड़**
बी.एस.टी.सी., द्वितीय वर्ष
डाइट गढ़ी

## मौलिकता का विकास करना ही शिक्षा है

अच्छी शिक्षा किस प्रकार दी जाए, इसमें क्या–क्या शामिल किया जा सकता है?

बुनियादी शिक्षा का अर्थ – बुनियादी शिक्षा का तात्पर्य ऐसी शिक्षा से है जिसमें बालक के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास हो जिसमें बालक शारीरिक एवं मानसिक रूप से अपना समग्र विकास करे। इसमें व्यावहारिक ज्ञान आवश्यक है।

शिक्षा के बारे में भी कहा गया है– शिक्षा जीवन जीने की कला नहीं बल्कि अपने–आप में जीवन है। इस प्रकार अच्छे जीवन की पहचान है–बुनियादी शिक्षा– जीवन का आधार है– बुनियादी शिक्षा।

मेरे अनुसार अच्छी शिक्षा में निम्न बातें ध्यान में रखने योग्य हैं–

1. छात्रों को केवल किताबी ज्ञान न देकर उनमें नैतिकता का ज्ञान भी दिया जाए।
2. छात्रों में रटंत प्रवृत्ति न होकर उनमें मौलिकता का विकास करना।
3. तनाव मुक्त वातावरण में शिक्षा देना।
4. उनके साथ कठोर व्यवहार के बजाय स्नेह व प्रेमपूर्वक व्यवहार किया जाए।
5. शिक्षा अच्छे जीवन का आधार और पहचान है उन्हें बताना।
6. छात्रों को प्रायोगिक रूप से कराकर बताएं जिससे वह ज्ञान स्थायी रहता है बनिस्बत केवल बोलकर जो बताते हैं केवल जानकारी या सूचना होती है। अतः प्रायोगिक ज्ञान दिया जाए।
7. छात्रों में आत्मविश्वास बढ़ाने के लिए विद्यालय की शैक्षिक एवं सहशैक्षिक गतिविधियों में भाग लेने के लिए प्रेरित किया जाए जिससे उनमें संकोच दूर होगा।
8. विद्यालय का वातावरण स्वतंत्र एवं ज्ञानवर्धक बनाया जाए।
9. भारत का भविष्य हमारे बच्चों में है वे हमारे देश के कर्णधार है तो देश को आज एक शिक्षा की जरूरत है वो है– बुनियादी शिक्षा।

**रोशनी पाटीदार**
बी.एस.टी.सी., प्रथम वर्ष
डाइट गढ़ी

# पाठ्यपुस्तक की बंदिश न हो

1. शिक्षा में श्रम, सृजन व सामाजिकता का समावेश होना चाहिए।
2. शिक्षा का परिवेश, समाज एवं छात्र से सीधा जुड़ा होना चाहिए।
3. शिक्षा में पाठ्यपुस्तकों की कोई बंदिश न हो।
4. बालक को सीखने व सिखाने हेतु स्वतन्त्रता दी जाए।
5. शिक्षा को व्यावहारिक बनाया जाए।
6. शिक्षा छात्र में क्रियात्मकता, ज्ञानात्मक व नैतिक विकास करनेवाली हो।
7. शिक्षा बालक में सोचने, समझने व कल्पनाशक्ति को बढ़ाने वाली हो।
8. विभिन्न विषयों को पढ़ाते समय प्रयोग व क्रियात्मकता ज़्यादा दी जानी चाहिए।
9. अध्यापन के समय शिक्षण–अधिगम सामग्री होनी जरूरी है।
10. नवीन बातों और विचारों को लेकर नियमित वार्तालाप बनाए रखें जिससे कल्पनाशक्ति व भाविक शब्दों का स्तर बढ़ेगा।
11. शिक्षा बालक या व्यक्ति की दुनिया से जोड़कर उनके विचारों के अनुसार दी जाए।
12. पाठ्यपुस्तकों से हटकर शिक्षा होनी चाहिए।
13. शिक्षा स्वयं करके सीखनेवाली हो।
14. शिक्षा बालक की रुचि में हो।
15. शिक्षा में रोज़गार से जुड़े नये–नये तथ्यों को समाहित किया जाए।
16. शिक्षा आसपास के वातावरण से जुड़ी हुई हो।

**मुकेश चन्द्र यादव**
बी.एस.टी.सी., द्वितीय वर्ष
डाइट गढ़ी

# शिक्षा से आत्मविश्वास कैसे बढ़े?

अच्छी शिक्षा का अर्थ है– बालक को व्यावहारिक ज्ञान के साथ शैक्षिक ज्ञान भी दिया जाना चाहिए। बालक को स्वतन्त्र एवं आनंददायी बनकर अध्ययन करवाना चाहिए। बालक को प्रयोगों के आधार पर शिक्षा देनी होगी क्योंकि बालक स्वयं करके सीखेगा। बालक को वातावरण के प्रति सामंजस्य रखने की शिक्षा देनी चाहिए। बालक को एक कक्षा–कक्ष में सीमित न रखकर परिवेश के प्रति जोड़ा जाए। अच्छी शिक्षा में बालक को अच्छा व्यवहार, दूसरों के प्रति आदर, सम्मान एवं प्रेमपूर्वक वातावरण हो। इस शिक्षा में बालक का शारीरिक एवं मानसिक विकास भी हो सकता है। बालक का सर्वांगीण विकास किया जाए। बालक अच्छी शिक्षा से कल्पनाशक्ति का विकास कर सकें। बुनियादी शिक्षा में बालक को करके सीखने को मिलेगा तो वह समझ पाएगा। अच्छी शिक्षा में बालक का अत्मविश्वास बढ़ेगा। शिक्षा बालकेन्द्रित होनी चाहिए। जब बालक पाठ्यपुस्तक पढ़ता है तब वह उसी तक सीमित रहता है, जबकि यह नहीं होना चाहिए, बालक पाठ्यपुस्तक पढ़े पर उसमें व्यावहारिक ज्ञान होना चाहिए। चार साल का बालक भी बहुत कुछ जानता है। वह अपने परिवेश एवं आस–पास के क्षेत्र में रहकर सीखता है। बालक

जब विद्यालय में जाता है तो वह घबराता है।

विद्यालय में जब बालक पुस्तक पढ़ता है तो गणित के सवाल उसे उलझा देते हैं वह समझ नहीं पाता कि यह मैं कैसे हल करूं या तो सवाल इतने कठिन होते हैं या वह समझ नहीं पाता। बालक को एक बिन्दु पर न रखकर उसे सभी प्रकार का ज्ञान दें।

बालक जीवन मूल्यों को विद्यालय में रहकर सीखे। बालक की झिझक को विद्यालय में तोड़ा जाए। बालक को जब कोई बात बताई जाए तो वह उसके जीवन से भी संबंधित हो और वह उसकी आवश्यकता भी महसूस कर सके। बालक बचपन से ही सीखता है और सीखने की प्रक्रिया जीवनभर चलती रहती है। बालक का पाठ्यक्रम उसके स्तर पर होना चाहिए। बालक की समस्या एवं उसकी कमज़ोरी को भी ध्यान में रखना चाहिए।

**कोमलता पण्ड्या**
बी.एस.टी.सी. द्वितीय वर्ष
डाईट गढ़ी

## व्यावहारिक ज्ञान से गणित को कैसे जोड़ें?

अव्यावहारिक ज्ञान जो पुस्तकों में दिया होता है उसका ज्ञान के रूप में परिवर्तन आवश्यक है। जैसे– हम कक्षा पहली से दसवीं कक्षा तक गणित पढ़ते आते हैं। गणित दिए हुए सवालों में दिया होता है कि मिलीमीटर को किलोमीटर में बदलकर 3 का गुणा करना। ऐसा तो हम किताबों में दिए हुए हल कर लेते है परन्तु इसका कहीं पर भी हमारे व्यावहारिक जीवन में उपयोग नहीं होता है। हमारे व्यावहारिक जीवन में ये बातें रोज़ाना उपयोग होती है कि बाज़ार में केले दस रुपये दर्जन हैं तो 3 दर्जन केले कितने में आएंगे।

अक्सर गणित कि किताबों में राम, श्याम, अनवर आदि नामों से अधिक सवाल दिए जाते है। कहीं पर ये ऐसा नहीं दिया होता कि सलमा, गीता, राधा, सीता। इसमें सुधार ज़रूरी है क्योंकि अगर बालिकाओं के नाम दिए जाएं तो बालिका शिक्षा को बढ़ावा मिलेगा।

अच्छी शिक्षा में बुनियादी शिक्षा को भी शामिल किया जाए तो अति अच्छा रहेगा। अगर बालकों को विद्यालय में ही भिन्न–भिन्न प्रकार की वस्तुएं बनाना सिखाएं तो आगे जाकर इन बालकों का भविष्य सुन्दर हो सकता है। स्वनिर्मित चीज़ें बनाकर इनका उपयोग करने की आदत बालकों में पड़ेगी।

**पिनल मेहता**
बी.एस.टी.सी., प्रथम वर्ष
डाइट गढ़ी

## शिक्षा और साक्षरता में फ़र्क़

प्रथम दृष्ट्या यह विचारणीय है कि क्या वर्तमान में प्रचलित शिक्षा व्यवस्था अच्छी नहीं हैं? क्या इसमें कहीं कमी हैं? यदि कमी है तो क्या उसे दूर किया जा सकता है?

चिन्तन करने पर हम यह पाते हैं कि इसमें कहीं न कहीं दोष या कमी है और यह हम इसलिए कह सकते हैं कि आज का डिग्रीधारी व्यक्ति बेरोज़गार है, निराश है और उसमें नैतिक पतन भी आ जाता है। यदि इसका कोई कारण है तो वह हमारी शिक्षा व्यवस्था।

शिक्षा के बारे में विद्वानों ने कहा कि 'शिक्षा वह है जो व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करे, उसके अंदर छिपी समस्त प्रकार की अच्छाइयों को बाहर निकालें।' यदि इस कथन को वर्तमान परिप्रेक्ष्य के साथ जोड़कर देखें तो लगता है कि जिसे हम 'शिक्षा–व्यवस्था' कह रहे हैं वह मात्र 'साक्षरता–व्यवस्था' है क्योंकि विद्यालय के यांत्रिक वातावरण में बालकों को पढ़ा–लिखाकर मात्र उकसाकर डिग्री दी जाती है। चारित्रिक, शारीरिक, वैचारिक या सर्वांगीण विकास नहीं हो पाता है। बालक को साक्षर कर उस पर शिक्षित होने की मुहर लगा दी जाती है। वह प्राप्त ज्ञान का उपयोग करना नहीं जानता क्योंकि उसके हाथों ने इस कौशल को नहीं पाया है। वास्तव में ज्ञानोपयोग की अवधारणा तब ही सार्थक परिलक्षित होती है जब ज्ञान व अवबोध का स्थायित्व आ चुका होता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह बड़ी–बड़ी डिग्रियां प्राप्त करने के बाद भी बेरोजगार व निराश रहता है। जबकि उसके विपरीत एक अनपढ़ मज़दूर या किसान बिना किसी डिग्री के रोज़गार प्राप्त करता है एवं अपने देश के लिए कुछ निर्माण करता है।

यदि उपर्युक्त दोनों स्थितियों पर गौर करें तो आप शिक्षित किसे कहेंगे? उसे जिसे पढ़ना–लिखना मात्र आता है या उसे जिसे पढ़ना–लिखना तो नहीं आता है लेकिन उसके पास कौशल, आशा, उत्साह एवं सृजनशक्ति है।

इन पर चिन्तन करने पर हमारी शिक्षा व्यवस्था में जो कमी नज़र आती है वह यह है कि शिक्षा व्यवस्था व्यावहारिक नहीं है। यह वातावरण के साथ पूर्णरूप से नहीं जुड़ पाई है। यह ययार्थ से परे है।

अतः इस चिन्तन के बाद हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि ये समस्त तत्त्व गांधीजी की 'बुनियादी शिक्षा' में है। ज़रूरत है तो इसे वर्तमान परिप्रेक्ष्य, स्थानीय वातावरण के साथ तालमेल बिठाकर वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में सुचारू रूप से लागू करने की। इसकी क्रियान्विति एक शिक्षक अपनी कक्षा में कर सकता है। यदि ऐसा किया जाता है तो शिक्षा की वर्तमान स्थिति में सुधार कर गांधीजी के 'सपनों का भारत' की अवधारणा साकार की जा सकती है।

**हितेष कुमार सुथार**
बी.एस.टी.सी., द्वितीय वर्ष
डाइट गढ़ी

## डाइट गढ़ी से हमें निम्न पूर्व सेवाकालीन छात्रों की रचनाएं भी मिलीं–

नयना कलाल, फहीन खान, लोकेश पटेल, रमेशचन्द्र पाटीदार, राजकमल कटारा, कोमल जैन, दिनेश चन्द्र, मिनल सुथार, नीतीशा पाटीदार, जगदीश बुनकर, दीपिका जोशी, विमल कुमार डामोर, मयंक सोनी, पुनीत सेवक, गणेश लाल चरपोटा, रागिनी द्विवेदी, नितेश पाटीदार, गीता पाटीदार, सुनील बुनकर, रमेश बुनकर, नीतू सिंह राव, विजयपाल बुनकर, निर्मला पाटीदार, चांदनी जैन, अनिता, मोनिका बुनकर, वर्तिका जैन, भूपेन्द्र सिंह राव, जोगेन्द्र सिंह चौहान, सुभाष तानियार, चांदनी शुक्ला, विदुषी जैन, नरेश कुमार बुनकर, जिग्नेश उपाध्याय, रूही सेवक, जयदीप कुमार जोशी, राजेश पाटीदार, शैलेन्द्र सिंह राव।

**संपादकीय**

# गांधीवादी शिक्षा का पैग़ाम

शिक्षा में दिलचस्पी रखनेवालों के लिए यह एक सुखद संदेश हो सकता है कि आमजन की शिक्षा के लिए प्रतिबद्ध विद्या भवन सोसायटी गांधीवादी शिक्षा केंद्र स्थापित करने जा रही है। यह अंक आपके हाथों में पहुंचेगा तब तक गांधीवादी शिक्षा महाविद्यालय प्रारंभ हो चुका होगा। वैसे यदि हम विद्या भवन का इतिहास उठाकर देखें तो इसकी स्थापना के समय से ही गांधी के समग्र विचारों को केंद्र में रखा गया था। यही कारण है कि विद्या भवन में गांधी की बुनियादी शिक्षा को आज़ादी के पहले से अपनाया जा रहा है। हाल ही में गांधीवादी शिक्षा केंद्र बनाने का अर्थ कई मायनों में अनूठा किंतु साहसिक क़दम माना जा सकता है। आज जब भूमंडलीकरण की बातें ज़ोर–शोर से की जा रही हैं, बाज़ारवाद हावी हो रहा है, शिक्षा में प्रतिद्वंद्विता का बोलबाला है, इन सबके चलते सामाजिक, नैतिक उसूल दरकिनार होते जा रहे हैं। ऐसे में गांधी के विचारों को नई पीढ़ी तक पहुंचाने का विचार कई मायनों में अर्थपूर्ण लगता है। वैसे तो गांधी को विशेष मौक़ों पर याद करने का एक फैशन बन गया है। शिक्षण संस्थानों और कार्यालयों में, विशेष अवसरों पर गांधी की प्रतिमा पर फूल मालाएं चढ़ाना, भाषण आदि करवाना ये कुछ आम प्रचलित से क्रियाकलाप हैं। लेकिन सही अर्थों में गांधी के विचारों को फलते–फूलते हुए उदयपुर में माउंट आबू रोड पर स्थित विद्या भवन बुनियादी स्कूल रामगिरि में मिसाल के बतौर देखा जा सकता है।

जब हम बेहतर शिक्षा की बात करते हैं तो हमें इसका हल गांधी के द्वारा रचित बुनियादी शिक्षा में मिलता है। जब–जब भी बेहतर शिक्षा की बातें की जाती रहेंगी, सर्वसाधारण समाज के छात्रों को शिक्षा के दायरे में लाने की बातें होंगी, इसके लिए गांधी की बुनियादी शिक्षा का ही सहारा लेना होगा। यही कारण है कि शिक्षा की नीतियों में बुनियादी शिक्षा के सिद्धांतों को याद किया जाता रहा है।

नई तालीम या बुनियादी शिक्षा आज भी उतनी ही प्रांसगिक बनी हुई है। यदि हम एन.सी.ई.आर.टी. के द्वारा तैयार किए गए पाठ्यचर्या–2005 (एन.सी.एफ.–2005) पर नज़र डालें तो इसमें गांधी के शिक्षा के विचारों को देखा जा सकता है। आजकल इस दस्तावेज़ पर शिक्षा विभाग ख़ासकर एस.सी.ई.आर.टी., डाइट्स और सर्व शिक्षा अभियान की कार्यशालाओं में चर्चा करते सुना जा सकता है। गांधी ने कहा है कि शिक्षा प्रणाली ऐसी हो जिसमें हर समुदाय की पहुंच बन सके। गांधी ने कहा था कि श्रम केंद्रित शिक्षा की स्थापना की जाए। यानेकि बच्चों को श्रम करने के मौक़े उपलब्ध कराए जाएं और श्रम से ज्ञान का सर्जन किया जाए। जो–जो बातें गांधी ने कही थीं उनको हमारे शिक्षक–प्रशिक्षणों में हर स्तर पर उसी प्रकार से याद किया जाता रहा है जैसा कि गांधी की प्रतिमा पर समय–समय पर फूलमालाएं चढ़ाने का।

बुनियादी शिक्षा की बातें काफ़ी महत्त्वपूर्ण हैं। एक तो हाथ का काम स्कूल में हो। दूसरा स्कूल की शिक्षा स्थानीय परिवेश से जुड़ी हो। और तीसरी बात है जो–जो विषय पढ़ाए जाएं, जो–जो कौशल पढ़ाए जाएं वे अलग–अलग न होकर संगठित हों, आपस में बंधे हुए हों। ज्ञान और काम के रिश्ते के भी तीन पहलू हैं। पहला मनोवैज्ञानिक या मानसिक पहलू। जब बच्चा अपनी अंगुलियों से या हाथों से कोई काम करता है तो उससे उसकी इन्द्रियों का विकास होता है। उसका स्नायुतंत्र भी विकसित होता है और साथ ही उसका मानसिक विकास भी होता है। दूसरा

पहलू है ज्ञान का मीमांसात्मक स्वरूप, जिसमें काम के ज़रिए ज्ञान की पूरी रचना, ज्ञान का इतिहास, ज्ञान की प्रकृति और ज्ञान का चरित्र जैसे सवाल शामिल हैं। तीसरा पहलू शिक्षाशास्त्रीय पक्ष है जो वैज्ञानिक मानसिकता, इतिहास का बोध, समाज का बोध एक समीक्षात्मक चिन्तन पर टिका हुआ है।

विद्या भवन ने इस बात को समझते हुए बुनियादी शिक्षा का एक ढांचा खड़ा करने का प्रयास किया है। यह न केवल बुनियादी शिक्षा को अपनाए हुए है बल्कि इसको आज के संदर्भ में पुनर्भाषित करने के प्रयास भी कर रहा है। पिछले 10–12 वर्षों में विद्या भवन बुनियादी विद्यालय, रामगिरि में एक प्रक्रिया के तहत समझा जा रहा है कि कैसे बुनियादी शिक्षा को कक्षा स्तर पर लागू करें। गांधी के शिक्षा के विचार कितने प्रासंगिक हैं इसका अनुमान इससे लगाया जा सकता है कि स्कूल परिसर में इसी शिक्षा सत्र से गांधीवादी शिक्षा केंद्र का सूत्रपात होने जा रहा है। दरअसल यह केंद्र उस प्रक्रिया का हिस्सा है जो गांधी के विचारों का व्यापीकरण करने का प्रयास करेगा। गांधी के विचारों को व्यापक करने का अर्थ यह है कि उनको आमजन तक पहुंचाया जाए। ऐसे शिक्षक तैयार किए जाएं जो गांधी की बुनियादी शिक्षा के अनुरूप शिक्षा दे सकें।

विद्या भवन गांधीवादी शिक्षा केंद्र का एक हिस्सा है शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान। अब तक विद्या भवन बुनियादी स्कूल, रामगिरि बच्चों को बुनियादी शिक्षा के माध्यम से अर्थपूर्ण शिक्षा देने का प्रयास करता रहा है। गांधीवादी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान में ऐसे शिक्षक तैयार किए जाएंगे जो स्कूलों में अर्थपूर्ण शिक्षा को अंजाम दे सकेंगे। दरअसल आज शिक्षा की प्रमुख समस्याओं की गिनती करें तो उनमें शिक्षक प्रशिक्षण का प्रभावी न होना है। शिक्षक प्रशिक्षण संस्थानों में अर्थपूर्ण शिक्षा कहें या बेहतर शिक्षा, इसके फलने–फूलने की अनुकूल परिस्थितियां मौजू नहीं है। अतः इस केंद्र को बेहतर शिक्षा का सैटेलाइट बनाने की योजना है।

गांधीवादी शिक्षा केंद्र के और प्रमुख आकर्षण होंगे जिनमें एक है संदर्भ पुस्तकालय। पुस्तकालय में गांधी और समकालीन शिक्षाशास्त्रीय संदर्भ सामग्री का समावेश किया जाएगा। आज के संदर्भ में कैसे गांधी के विचारों के अनुरूप करिकुलम तैयार किया जा सकता है। ज़ाहिर है कि गांधी ने जो बातें कही थीं तब की परिस्थितियों से आज काफ़ी फ़र्क़ हैं। और इन फ़र्क़ परिस्थितियों में हम गांधी के विचारों को कैसे अपना सकते हैं। यह हमारे सामने एक चुनौती है।

# बहस के लिए

देश में आज सर्वत्र, शिक्षा के सब हलकों (सभी स्तर पर) में विशेष तौर से विद्यालयी शिक्षा के संदर्भ में गुणात्मक शिक्षा की बात की जा रही है, गुणात्मक शिक्षा का गुणगान किया जा रहा है, चर्चा की जा रही है। हम यह महसूस करते हैं कि इस मुद्दे पर एक सार्थक बहस होनी चाहिए। इस मुद्दे पर हम यहां चार सवाल उठा रहे हैं। हम चाहते हैं कि शिक्षा में काम करने वाले हमारे साथी इसके बारे में अपनी समझ और राय व्यक्त करें।

1. गुणात्मक शिक्षा की एक कक्षा की पहचान क्या होगी?
2. गुणात्मक शिक्षा देनेवाला शिक्षक कैसा हो?
3. आपकी समझ में गुणात्मक शिक्षा क्या है?
4. क्या आपकी संस्था या स्कूल में गुणात्मक शिक्षा होती है? अगर होती है तो कैसे? नहीं होती है तो क्यों?

आपसे अनुरोध है कि इन चारों सवालों पर अपने अनुभव, विचार, चिन्तन को प्रकट करें ताकि हम गुणात्मक शिक्षा के बारे में समझ बना सकें।

आशा करते हैं कि आप इस चिन्तन में सहयोगी बनकर इस संवाद को आगे बढ़ाने में मदद करेंगे।

सरोकार

# साझेदारी का बदलता स्वरूप

हृदय कांत दीवान

सार्वजनिक निजी साझेदारी के विचार पर बात करने से पहले यह समझने की आवश्यकता है कि 'सार्वजनिक' से हमारा आशय क्या है? यदि अवधारणा के स्तर पर देखें तो सार्वजनिक का एक अर्थ सिर्फ़ सरकारी व्यवस्थाओं से लिया जाता है और इसमें सभी शासकीय संस्थान आ जाते हैं जैसे कि राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, जिला शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान, सीमेट और स्कूल आदि। सर्व शिक्षा अभियान भी इसमें शामिल हो जाता है क्योंकि उसे सरकार ने एक संस्था के रूप में स्थापित किया है। दूसरे अर्थों में सार्वजनिक संस्थाओं से आशय उन संस्थानों से होता है जिन्हें जनता के हित में काम करने की भावना से बनाया गया है। जिस तरह सर्व शिक्षा अभियान है उसी तरह की संस्थाएं एकलव्य, दिंगतर या विद्याभवन भी है। ऐसी बहुत–सी बड़ी–बड़ी संस्थाएं हैं जिन्हें जनहित में काम करने के लिए बनाने में बहुत से लोग जुड़े। इस अर्थ में हम सार्वजनिक को 'नागरिक समाज' की संस्थाएं भी कह सकते हैं। इसमें पंचायती राज संस्थान भी शामिल हो जाते हैं। यह सार्वजनिक की एक अलग अवधारणा है। तीसरे अर्थों में हम उन संस्थाओं की बात करते हैं जो सीधे–सीधे सरकारी तो नहीं हैं, जैसे कि अहमदाबाद नगर निगम या दिल्ली नगर निगम। सार्वजनिक निजी साझेदारी के विमर्श में हमें स्पष्ट रूप से यह समझना होगा कि सार्वजनिक से हमारा आशय क्या है और चर्चा करते हुए इन तीनों प्रकार की संस्थाओं पर बात करनी पड़ेगी।

इसी तरह 'निजी' शब्द के अर्थ पर बात करें तो इसके भी बहुत से आयाम हैं और यह भी एकरूप अवधारणा नहीं है। निजी का एक अर्थ व्यक्तिओं (इनडिविजुअल) से लिया जाता है, इस मायने में सार्वजनिक संस्थाओं के साथ व्यक्तिओं की साझेदारी सलाहकारों या समितियों के सदस्य आदि के रूप में हो सकती है। सार्वजनिक निजी साझेदारी का यह एक स्वरूप है और यह काफ़ी समय से रहा है। सार्वजनिक निजी साझेदारी के रूप में अभी जो शोर हो रहा है उसमें इस रूप को भुलाया जा रहा है। निजी के दूसरे अर्थ में कॉरपोरेट क्षेत्रा आता है। कॉरपोरेट क्षेत्र पहले भी रहा है लेकिन अब इनकी भूमिका बदली है और बढ़ी भी है। कॉरपोरेट क्षेत्र शिक्षा में दो तरह से जुड़ रहा है। एक वे जो अपने शिक्षा संस्थान खोल रहे हैं और दूसरे वे जो सरकार की मदद करने की कोशिश कर रहे हैं। निजी में उन छोटे–छोटे उद्योगों को भी शामिल किया जा सकता है जो कि कॉरपोरेट से भिन्न हैं। ये उद्योग सरकारी स्कूलों या अन्य संस्थाओं द्वारा खोले गए स्कूलों की मदद करते हैं। यह निजी का एक और आयाम है।

इसकी अगली कड़ी में संस्थाएं आती हैं और इनका स्वरूप भी कई तरह का है। कुछ संस्थाएं तो ऐसी हैं जो सरकार के कार्यक्रमों का क्रियान्वयन करती हैं। कुछ संस्थाएं ऐसी हैं जो सरकार के काम की दिशा को बदलना चाहती हैं। ये संस्थाएं सरकार के काम में मदद करती हैं और इनके भी कई स्वरूप हैं।

इसके अलावा कुछ निजी शैक्षिक कम्पनियां हैं। ये सरकारी संस्थाओं के साथ मिलकर शिक्षा में सुधार करना चाहती हैं और इस काम में वे अपनी भूमिका को एक कम्पनी की तरह देखती हैं। ये कम्पनियां चाहती हैं कि उनके काम का मूल्य इनको मिले। ये इसे व्यवसाय (प्रोफेशन) मानती हैं फिर चाहे इसमें शुद्ध लाभ न हो लेकिन वे इसका मूल्य लेना चाहती हैं। इसी क्रम में आगे जाकर संदर्भ केन्द्र आते हैं। ये संदर्भ केन्द्र बड़े भी हैं और छोटे भी हैं। बहुत से संदर्भ केन्द्रों का स्वरूप इतना वृहद् है कि सरकार की बहुत–सी संस्थाएं उनके साथ अन्तः क्रिया करती हैं। वर्तमान में इन संदर्भ केंद्रों में से कुछ तो ऐसे हैं जो सरकार के शिक्षा विभागों के साथ मिलकर शिक्षक–प्रशिक्षणों, पाठ्यपुस्तक लेखन जैसे महत्वपूर्ण कार्यों को अंजाम देते हुए बेहतर शिक्षा को स्थापित करने में भूमिका अदा कर रहे हैं।

यदि संस्थाएं चलाने के एक अन्य अनुभव को देखें तो इसका एक महत्त्वपूर्ण उदाहरण 'ग्रांट इन एड' द्वारा संचालित संस्थाएं हैं। इसमें सरकार ने अच्छी शिक्षण संस्थाओं को चलाने के लिए योगदान किया। सरकार ने संस्थाओं से कहा कि आप अच्छे स्कूल चलाइए और इसके लिए संसाधनों की व्यवस्था हम करेंगे। मध्य प्रदेश में इस तरह की संस्थाओं को चलाने के लिए 105 प्रतिशत धन दिया जाता था। अर्थात् 100 प्रतिशत धन स्कूल के वास्तविक ख़र्चे चलाने के लिए और 5 प्रतिशत संस्था चलाने के लिए दिया जाता था। राजस्थान में जो शिक्षण संस्थाएं चलती थीं उनमें उन्हें 100 प्रतिशत धन दिया जाता था लेकिन जो संस्था 2–3 स्कूल चलाती थी उसे अपना केन्द्रीय प्रशासनिक कार्यालय चलाने के लिए भी कुछ धन मुहैया कराया जाता था। धीरे–धीरे सरकार ने इसे 90 प्रतिशत किया और अब राजस्थान सरकार इस ज़िम्मेदारी से पीछे हटना चाहती है। मध्यप्रदेश ने कुछ साल पहले अनुदान बंद करने का फैसला ले लिया था और यह जद्दो जहद अभी न्यायालय में चल रही है। कुछ को अनुदान मिलता है लेकिन पहले से कम। महाराष्ट्र में भी इन्हें अनुदान बन्द करने की क़वायद है। राजस्थान में भी अनुदान कम किया जा रहा है।

सरकार अभी ऐसी संस्थाओं को कह रही है कि जो संस्थाएं अपने स्कूल बंद करना चाहती हैं वे बंद कर दें और जो ज़मीन सरकार ने स्कूल चलाने के लिए दी थी उसे वापस सरकार को सौंप दें। इन स्कूलों में जो शिक्षक कार्यरत हैं सरकार उन्हें कहीं और लगा देगी। अर्थात् सरकार कह रही है कि अब हमें स्वायत्त रूप से चलनेवाले इन (अच्छे) स्कूलों की ज़रूरत नहीं है। सरकार का तर्क है कि इस तरह के संस्थान ख़र्चीले हैं और वह इन्हें नहीं चलाना चाहती। इसमें स्कूल और कॉलेज दोनों ही शामिल हैं। इसका आशय यह है कि इस दिशा में सरकार निजी साझेदारी को घटा रही है। वह साझेदारी दो दिशाओं में घटा रही है। जो संस्थाएं प्रजातांत्रिक आधारों एवं स्वतंत्र विचारों के साथ सरकार से बातचीत करना चाहती थीं उनके साथ वह साझेदारी कम कर रही है। ऐसी संस्थाएं जो स्वायत्त रूप से अपने सिद्धान्तों के आधार पर अच्छे स्कूल चलाना चाह रही थीं उनको भी कम किया जा रहा है। इससे उलट ऐसी साझेदारी को बढ़ावा दिया जा रहा है जिसमें सरकार को दख़लंदाज़ी महसूस न हो और उन्हें उनकी मदद नहीं करनी पड़े। जिस तरह की निजी साझेदारी का स्वरूप अभी उभर रहा उसका निहितार्थ यह है कि अब शिक्षा सरकार की ज़िम्मेदारी नहीं है। अर्थात् निजी संस्थान ही ज़िम्मेदारी ले, संसाधन जुटाएं और काम करें। इसके साथ ही संस्थाओं को नियंत्रित करने के जो मानदण्ड थे उन्हें भी ढीला किया जा रहा है। इन्हें हल्का करना भी एकतरफ़ा ही है यानी एक तरह की संस्थाओं को अनुमति मिलेगी और उन्हें नियंत्रित भी नहीं किया जाएगा। लेकिन दूसरी तरफ़ ऐसी संस्थाओं

को, जो कि अलग तरह से सोचती हैं और काम करना चाहती हैं, उन्हें स्कूल चलाने की अनुमति नहीं मिलेगी। मुझे लगता है कि अब ये उलझा हुआ मामला हो गया है। संविधान में शिक्षा के जो आधार हैं उन पर सरकार मज़बूती से नहीं खड़ी है।

यदि इस पृष्ठभूमि में सार्वजनिक निजी साझेदारी की बात करें और इसके इतिहास को देखें तो हमारे देश में साझेदारी के हर तरह के अनुभव हैं। सरकारी ढांचे के साथ हस्तक्षेप के कई उदाहरण हैं। इसका एक बड़ा प्रयास 1972 से शुरू हुआ था जिसका प्रमुख हिस्सा होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम है। यह सार्वजनिक निजी साझेदारी का एक ऐतिहासिक उदाहरण था जिसमें कई तरह की संस्थाएं और व्यक्ति शामिल थे। यह प्रयास काफ़ी लम्बे समय तक चला और यह बहुत ही गहरा प्रयास था। मानव संसाधन विकास मंत्राालय ने जितनी भी संस्थाओं को शिक्षा में काम करने के लिए पैसा दिया वे भी सार्वजनिक निजी साझेदारी का ही उदाहरण हैं। मुझे लगता है कि अभी जो विमर्श चल रहा है उसमें हम सार्वजनिक निजी साझेदारी को संकीर्ण दृष्टि से देखने लगे हैं। यदि सही मायने में इसके इतिहास को देखें तो यह लगेगा कि इसे संकीर्ण किया जा रहा है और कई स्वरूपों को जानबूझकर पीछे धकेला जा रहा है।

सरकार के ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम या सर्व शिक्षा अभियान के प्रयास देखें तो उनमें भी जिस तरह के प्रयासों की गुंजाइश लोक जुम्बिश और ज़िला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम में थी वैसी सर्व शिक्षा अभियान में नहीं रखी गई। सर्व शिक्षा अभियान में सरकार ने निजी क्षेत्रों को साझेदारी देने के अपने रुख़ में बदलाव किया है। सर्व शिक्षा अभियान के अन्तर्गत सरकार ने जिस तरह से साझेदारी के स्वरूप को परिभाषित करने की कोशिश की उसका निहितार्थ है कि सरकारें यह कह रही है कि यह तय हम करेंगे कि क्या करना है। इसके क्रियान्वयन के लिए कोई अन्य संस्थाएं हो सकती हैं। इसमें मान्यता यह है कि सरकारें जानती हैं कि उन्हें क्या करना है और इसके बारे में उसे किसी तरह की सलाह नहीं चाहिए।

यह भी कह रही है हमारे पास क्रियान्वयन का ढांचा नहीं है तो आप ठेकेदारी करके क्रियान्वयन कर दो। इसीलिए सार्वजनिक के दायरे को थोड़ा खोलकर देखना चाहिए। अभी सरकार कह रही हैं कि सार्वजनिक निजी साझेदारी को बढ़ाया जाना चाहिए तो यहां उसके कहने का आशय यही है कि ख़ास तरह के निजी साझेदारी को बढ़ाया जाना चाहिए और निजी को सरकार की ज़्यादा मदद की ज़रूरत है। इसके लिए उन्हें कुछ छूट भी दे सकती है। सरकार से ये निजी संस्थान उन संस्थाओं से कहीं ज़्यादा छूट ले रहे हैं जितनी मदद सरकार पहले संस्थाओं की कर रही थी। इस तरह की भागीदारी में निजी संस्थान सरकार से जितने संसाधन और मदद ले रहे हैं वह उनको जितनी मिलनी चाहिए उससे ज़्यादा है।

मैं निजीकरण के बारे में यह नहीं कहना चाहता कि वह अच्छा है या ख़राब। मूल सवाल यह है कि चाहे निजी संस्थाएं हों या सरकारी, यदि वे ग़रीब बच्चों को अच्छी शिक्षा दे पाते हैं तो वह उचित है। अर्थात् ऐसी शिक्षा जो हमारे संविधान, लक्ष्यों के अनुरूप हो और उसमें हर इंसान के प्रजातांत्रिक अधिकारों के हक़ों की जगह हो, ऐसी शिक्षा कहीं से भी मिले मेरे हिसाब से उचित है। यदि इन मानदण्डों के अनुरूप शिक्षा मिल रही है तो मैं नहीं समझता कि शिक्षा को निजी हाथों में सौंपने में कोई दिक़्क़त होनी चाहिए। उदाहरण के लिए मान लीजिए कि, सरकार एकलव्य, दिगन्तर या किसी अन्य स्वयं सेवी संगठन से कहे कि आप हमारे पांच स्कूलों को चलाइए और इन्हें चलाने के लिए आप

अपना संविधान तो उपयोग करें किन्तु यह हमसे देश के संविधान व शिक्षा के लक्ष्यों के अनुरूप हो तो मुझे इसमें किसी तरह की बुराई नहीं लगती। लेकिन इसके स्थान पर सरकार यह कहे कि यदि आपके पास पैसा है तो आप ये स्कूल चला लीजिए। और हम आपसे यह भी नहीं पूछेंगे कि आप कितनी फ़ीस ले रहे हैं और किन मूल्यों को अहमियत दे रहे हैं, तो यह भिन्न बात हो जाएगी। इसका मतलब है कि सरकार ने संविधान के अनुरूप ग़रीब बच्चों की शिक्षा की प्रतिबद्धता को छोड़ दिया है। यह सिर्फ़ निजीकरण की ही बात नहीं है, यहां सरकार संवैधानिक प्रतिबद्धता को भी छोड़ रही है। इसीलिए यह ज़्यादा चिन्ता का विषय है।

मेरा मानना है कि सार्वजनिक निजी साझेदारी बढ़ने के बजाए घट रही है। पहले से सार्वजनिक निजी साझेदारी की जो परंपरा रही है उसे पुनर्जीवित करके यह सोचने की आवश्यकता है कि उसे कैसे मज़बूत बनाया जा सकता है। क्योंकि साझेदारियों के वर्तमान प्रस्तावों में जो दायरे संस्थाओं को मिल रहे हैं उनमें सरकारी ढांचे के साथ संवाद की गुंजाइश ख़त्म हो रही है। अभी सही मायने में साझेदारी की बजाए निजी और सार्वजनिक अलग–अलग हो रहे हैं। यदि हम सार्वजनिक निजी साझेदारी में निजी का अर्थ स्वयं सेवी संगठनों या पंचायती राज संगठनों या व्यक्तियों से लेते हैं तो लोक जुम्बिश ने इस दिशा में महत्वपूर्ण प्रयास किए थे और इससे स्कूलों के सुधार की दिशा में भी महत्त्वपूर्ण काम हुआ। उस समय कॉरपोरेट और उद्योग जगत् शिक्षा के क्षेत्र में नहीं आया था। यदि सार्वजनिक का अर्थ सिर्फ़ सरकार से नहीं लिया जाए तो वह भी कॉरपोरेट संस्थाओं के साथ बहुत साझेदारी करता है। विदेशों में उद्योग, विश्वविद्यालयों की बहुत मदद करते हैं। उनको चलाने का काफ़ी धन उद्योग से आता है। हमारे यहां उच्च शिक्षा के विश्वविद्यालयों ने अपनी शर्तों पर कभी भी साझेदारी नहीं की। उन्होंने कभी भी उद्योग जगत् के साथ साझेदारी नहीं की कि, आप हमारे यहां शिक्षा में निवेश करिए। इसमें एक अपवाद शायद आई.आई. एम. है तो वह भी कॉरपोरेट सार्वजनिक के साथ बहुत ही अन्तःक्रिया करता है। लेकिन अभी की साझेदारियों में कॉरपोरेट जगत् को विश्वविद्यालय चलाने का लाइसेंस दिया जा रहा है। यदि कॉरपोरेट जगत् और नौकरशाह ही सब कुछ कर सकते हैं तो विश्वविद्यालय का क्या उपयोग है? क्योंकि वर्तमान में प्रबंधन संस्थान और विश्वविद्यालय पर्याप्त मात्रा में हैं, इसलिए और नए खोलने की ज़रूरत नहीं है। यदि सभी संस्थानों को आई.ए.एस. या कॉरपोरेट जगत् को ही चलाना है तो विश्वविद्यालयों में उच्च शिक्षा या शोध की ज़रूरत नहीं है। शायद हमें यह विचार करने की ज़रूरत है कि हम किस दिशा में बढ़ना चाहते हैं ? निजी विश्वविद्यालय का क्या अर्थ है और इन्हें खोलने का अधिकार किसको मिलना चाहिए और इसका ढांचा क्या होना चाहिए, इन सब सवालों पर सोचने की आवश्यकता है।

यदि सार्वजनिक निजी साझेदारी के तहत सरकार निजी संस्थाओं से कहे कि वे स्कूल या अन्य शैक्षिक संस्थाएं चलाएं जैसे कि डाइट, सीमेट आदि–आदि तो मेरे हिसाब से इसमें कुछ भी अनुचित नहीं है। संस्थाएं चलाने का तरीक़ा शिक्षा के उद्देश्यों, संविधान व सभी को बेहतर शिक्षा उपलब्ध करवाने के दर्शन के तहत रहते हुए स्वतंत्र हो लेकिन इन्हें चलाने के लिए संसाधन सरकारी होने चाहिए। जो नियम, क़ायदे संस्थाओं को बांध देते हैं उन्हें ढीला किया जाना चाहिए लेकिन यह कहना कि यदि संसाधन आप जुटा लें तो जो आपकी मर्ज़ी में आए वह आप करिए, मुझे इसमें बहुत गहरी समस्या लगती है। अगर बहुत क़ाबिल और सक्षम लोगों को सरकार रख नहीं सकती, उनके लिए जगह नहीं बना सकती या सरकारी ढांचे का स्वरूप इतना उलझ गया है और उसे सही

नहीं किया जा सकता तो इसके लिए छोटे–छोटे ढांचों की ज़रूरत पड़ेगी। इसीलिए ग्रांट इन एड संस्थाओं के ढांचे में दिया विचार अच्छा था। उस ढांचे को भी सरकारी तंत्र के अनियंत्रित व भ्रष्ट हस्तक्षेप ने रगड़–रगड़कर ज़बरदस्ती ख़राब कर दिया। यदि इस अनुभव से सीखा जाए तो इसका मतलब होगा कि सरकार संसाधन जुटाए, उपयुक्त संस्थानों को चुनकर उन्हें स्वतंत्रता दे। संस्थाओं की पहचान के सक्षम मानदण्ड होने चाहिए जिससे कि सही मायनों में अच्छी संस्थाओं को पहचाना जा सके। इन आधारों पर सार्वजनिक निजी साझेदारी की बात की जा सकती है। लेकिन इसके बजाए यह कहा जाए कि जिन संस्थाओं के पास पैसा है, अंग्रेजी है या बड़े–बड़े ढांचे चलाने का अनुभव है; चाहे वह कबूतर पालन का ही अनुभव हो वह शिक्षा के संस्थान चला सकता है, तो मुझे इसमें समस्या लगती है। कुछ अपवादस्वरूप कॉरपोरेट क्षेत्र के संस्थानों को छोड़कर ज़्यादातर की शिक्षा के काम को बेहतर तरीक़े से चलाने की तैयारी नहीं है। ये संस्थान ऐसा भी नहीं सोचते कि पहले वे अपनी क्षमता विकसित करें और फिर हस्तक्षेप करें।

आजकल सार्वजनिक निजी साझेदारी के नाम पर यह बहुत हो रहा है कि बड़े–बड़े कॉरपोरेट, जो किसी भी क्षेत्र में काम कर रहे हों, बिना शिक्षा में अपनी क्षमता पैदा किए, क़ाबिलियत विकसित किए कह रहे हैं कि वे शिक्षा के मामले में सरकार को सलाह दे सकते हैं और शिक्षकों, डाइट और यहां तक कि राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् की फैक्लटी का प्रशिक्षण कर सकते हैं, मुझे इसमें बहुत बड़े ख़तरे दिखाई देते हैं। सोचने की बात यही है कि जिन संस्थानों के पास शिक्षा में हस्तक्षेप करने की क्षमता नहीं है लेकिन वे कह रहे हैं कि उनके पास संसाधन हैं, उन्हें सरकार से पैसे नहीं चाहिए और उन्हें शिक्षा में हस्तक्षेप करने की ज़िम्मेदारी सौंपने के बारे में सोचा जा रहा है। जबकि सरकार भी यह कह रही है कि उसके पास शिक्षा के लिए पैसों की कमी नहीं है।

यह पूरी दुनिया का अनुभव है कि जो क्षेत्र इंसान की बुनियादी आवश्यकताओं से जुड़ते हैं, फिर चाहे वह शिक्षा हो, स्वास्थ्य हो या भोजन हो या मानवीय समता या स्वतंत्रता हो; निजीकरण की प्रक्रियाएं कभी भी इन्हें सभी की बराबरी की तरफ़ नहीं ले गई हैं। किसी भी देश को उदाहरण के रूप में देखें तो लगता है कि जहां भी ग़ैर बराबरी रही है, सरकार ने ही ग़रीब बच्चों की शिक्षा के प्रयास किए हैं। कुछ व्यक्ति व संस्थाएं अपने–अपने स्तर पर मदद करती हैं किन्तु प्रमुख दायित्व शासन का ही है। अमेरिका में भी बच्चों की शिक्षा की ज़िम्मेदारी सरकारों की ही है। जहां बाज़ार का सबसे ज्यादा बोलबाला है वहां भी शिक्षा को सरकार ही मुहैया करवाती है, तो यह तर्क कहां से आ रहा है कि बाजार ही सभी स्कूलों की गुणवत्ता में सुधार कर सकेगा। ऐसा कहीं भी नहीं हुआ है और हो भी नहीं सकता। बाज़ार ग़रीब बच्चों को क्यों शिक्षा देगा, इसका कोई कारण नहीं है। यदि हमारे देश के संदर्भ में बात करें तो यहां तो निजी स्कूल बहुत पहले से हैं। शहरों में जो निजी स्कूल हैं वे शिक्षा का बाज़ार ही हैं। क्या वे शिक्षा को बेहतर कर रहे हैं? सही अर्थों में तो वे कोचिंग क्लास चला रहे हैं।

निजीकरण, बाजार व शिक्षा में इनकी भूमिका बढ़ाने के बारे में चर्चा करते समय यह भी देखना होगा कि बाजार शिक्षा की मांग किस तरह पैदा करेगा? शिक्षा की गुणवत्ता से हम समझते क्या हैं ? यदि इसका मतलब यह है कि हर व्यक्ति, हर छात्र/छात्रा सोचे की वह किसी दूसरे को गड्ढे में डालकर उसके उपर खड़ा हो जाए, तो बाज़ार ज़रूर इस तरह की शिक्षा को आगे बढ़ाएगा। लेकिन यदि हम अच्छी शिक्षा का मतलब यह समझते हैं कि हम एक–दूसरे को अच्छी तरह से

समझना सीखें, अपने अधिकारों को समझें, अपनी ज़िम्मेदारियों को समझना सीखें और यह समझना सीखें की पूरे समाज के विकास के लिए मैं क्या कर सकता हूं तो बाज़ार के लिए कभी भी यह काम स्वाभाविक नहीं हो सकता। इसीलिए शिक्षा की गुणवत्ता की बात बाज़ार के अन्य उत्पादों की तरह नहीं की जा सकती। यह वैसा उत्पाद नहीं है जैसा कि साबुन है। क्योंकि यदि मैं चाहूं तो साबुन ख़रीदूं और नहीं चाहूं तो नहीं ख़रीदूं। लेकिन शिक्षा के बारे में तो सरकार अपने लक्ष्यों में कह रही है कि वह सबको शिक्षा देना चाहती है। यदि कोई साबुन नहीं ख़रीदे तो सरकार उसकी चिन्ता नहीं करती लेकिन यदि कोई शिक्षा नहीं लेता है तो सरकार को चिन्ता होनी चाहिए। बाज़ार क्यों चिन्ता करेगा कि आपने शिक्षा ली है या नहीं? बाज़ार तो सिर्फ़ यह करेगा कि यदि आपके पास पैसा है तो आप आइए और शिक्षा लीजिए, नहीं है तो आपको शिक्षा नहीं मिलेगी और न ही उसे इस बात की चिन्ता है। यदि सभी को शिक्षा मुहैया करवानी है तो यह काम बाज़ार नहीं कर सकता।

इसमें यह भी देखना होगा कि हमारे सरकारी तंत्र में किस तरह के लोग हावी हैं और उनकी क्या प्राथमिकताएं हैं? एक ज़माने में जो सरकार के सचिव होते थे वे यह नहीं मानते थे कि उनको शिक्षा की पर्याप्त समझ है। वे यह मानते थे कि उनका काम ढांचे को चलाना है और वे संस्थाएं जो शिक्षा में काम कर रही हैं जैसे कि राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् या राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद् जैसी संस्थाएं बताएंगी कि शिक्षा में क्या करना है। लेकिन अभी जो प्रक्रियाएं चल रही हैं उनमें सरकारी अधिकारियों को लगता है कि उन्हें शिक्षा की पूरी समझ है और इनको किसी से कुछ समझने की ज़रूरत नहीं है। जितना इनको आता है लगभग उतना ही निजी या कॉरपोरेट क्षेत्र के लोगों को आता है तो इनको लगता है कि इन्हें पर्याप्त आता है और इनकी समझ व प्रमुख मान्यताएं भी एक सम्भव ही हैं और ये शिक्षा को चला सकते हैं। यहां यह देखने की ज़रूरत है कि यह शिक्षा की क़ाबिलियत को कैसे समझने लगे हैं। उन्हें कभी भी ऐसा नहीं लगता कि हमारे प्रदेश में इतने सारे लोग हैं और हम उनकी शिक्षा का बंदोबस्त नहीं कर पा रहे हैं। वे सिर्फ़ आई.आई.टी. के जैसी प्रतियोगिताओं वाले छात्रों व उनकी समस्या के बारे में भी सोचते हैं, ग़रीब बच्चों के पढ़ना, लिखना सीखने के बारे में नहीं। इनकी शिक्षा के बारे में सोचनेवाली, उनकी चिन्ता करने वाली संस्थाओं के साथ भागीदारी के बारे में नहीं सोचा जाता।

हाल की बढ़ती साझेदारियों के पीछे सरकार की मान्यता है कि वह अपने ढांचे को सुधार नहीं सकती। एक और बात इसके साथ जुड़ी है – शिक्षा को प्रबंधन का मामला समझा जा रहा है। हालांकि यह सिर्फ़ शिक्षा के लिए ही नहीं है। विकास के पूरे क्षेत्र को मात्रा प्रबंधन का मसला माना गया है। बहुत से ऐसे संस्थान हैं जिन्हें या तो सरकार ने ही या इस देश के बुद्धिजीवियों ने बनाया है जो ग्रामीण प्रबन्धन पर कार्य कर रहे हैं। उनको लगा कि ऐसे लोगों की ज़रूरत है जो विकास को कुछ हद तक प्रोफेशनली मैनेज कर सकें। उस समय यह माना गया था कि जो विकास के होनेवाले प्रबंधक हैं वे विकास के क्षेत्र की संस्थाओं में जाकर काम करें, उस पूरी प्रक्रिया को समझें और उनसे सीखें और उसमें प्रबंधन का थोड़ा बहुत हिस्सा डालें। लेकिन धीरे–धीरे जैसे–जैसे समस्या जटिल होती गई और हमने देश के विकास की केन्द्रीकृत व्यवस्था के बारे में सोचना शुरू किया, वैसे–वैसे यह ज़्यादा व्यवस्थागत मामला होता गया। क्योंकि जब भोपाल में बैठा कोई आई.ए.एस. अधिकारी यह मानता है कि यदि वह स्कूलों के लिए जवाबदेह है तो उसे पता होना

चाहिए कि इस समय प्रान्त के हर स्कूल में क्या हो रहा होगा और वह एक जैसा ही होना चाहिए, तो इसका एक ही तरीक़ा है कि शिक्षा को एक औद्योगिक उत्पाद की तरह बना दिया जाए। जब वह औद्योगिक उत्पाद की श्रेणी में होगी तो उसका तरीक़ा यही होगा कि कर्मचारी कारख़ाने में आने का समय डाल दे और जाने का भी समय डाल दे। इस मॉडल में अब हम शिक्षा में भी सिर्फ़ यही करना चाहते हैं। दूसरी तरफ़ यह भी हक़ीक़त है कि हमें शिक्षा की शिक्षाशास्त्रीय चुनौतियों से जूझना मुश्किल लगता है। बहुत से ऐसे लोग हैं जो कि प्रमुख संस्थानों में बैठे हैं वे कहते हैं कि आप शिक्षा में शिक्षाशास्त्र या दर्शन की बात क्यों करते हैं। आप तो बस यह सुनिश्चित कर दें कि शिक्षक नियमित रूप से चला जाए और स्कूल खोले। यदि यह हो गया तो बाक़ी काम तो अपने आप हो ही जाएगा। इस तरह का विचार बहुत से 'अच्छे' शोधकर्ताओं का भी है। अतः इस विचार के लिए सिर्फ सरकार को ही दोष देना उचित नहीं है। शिक्षा को प्रबंधन के नज़रिए से देखने या स्कूल में अच्छी शिक्षा का मतलब मात्र स्कूल के खुलने और बंद होने तक सीमित होने में बहुत से शिक्षा में काम करनेवाले व्यक्तियों का भी बड़ा योगदान है। यह सही है कि सरकार का जो ढांचा है और सरकार पूरे विकास को जिस तरह से देख रही है, उसमें शिक्षा को प्रबंधन रूप में देखने वाले का नज़रिया और बढ़ता जा रहा है। शिक्षक की भूमिका को सामग्री देनेवाला, संजोनेवाला तक सीमित करना व ऐसी सामग्री का निर्माण करना जो अचूक है, शिक्षक की क़ाबलियत/रुचि आदि सबमें निरपेक्ष है, इसी दिशा में बढ़ने का रास्ता है। हम शिक्षक को इंसान व शिक्षा भी संवाद के स्थान पर एक की संसाधन और दूसरे की उत्पाद के रूप में देखने लगे हैं। निजी साझेदारी के नर्म स्वरूप व प्रबन्धन की बढ़ती प्रमुखता भी इसे सींच रही है।

लोक जुम्बिश ने शिक्षा की व्यवस्था को विकेन्द्रीकृत करने की बहुत कोशिश की और इससे नौकरशाही को लगा कि हमारी भूमिका इसमें घट रही है। इसलिए लोक जुम्बिश का ज़्यादा विरोध नौकरशाही ने ही किया। उनका कहना था कि 'हमें तो पता ही नहीं है क्या हो रहा है, सरकार तो कुछ तय ही नहीं कर रही है। सरकार अनुदान दे रही है और तय करनेवाला कोई और है। लेकिन शिक्षा की समझ तो यही कहती है कि काम करनेवाला कोई और हो और संसाधन सरकार उपलब्ध करवाए। यदि गांधीवादी विचार या स्थानीय समुदाय की ज़िम्मेदारी की बात करें तो फिर सरकार को कर जुटाने की ज़रूरत नहीं है। गांधीवादी विचार में यह माना जाता था कि स्थानीय समुदाय स्कूल को पैसा देगा और स्कूल चलाएगा। लेकिन सरकारों ने स्थानीय समुदाय को कर जुटाने की इजाज़त नहीं दी और केन्द्रीयकृत रूप से कर इकट्ठा कर रही हैं, तो फिर सभी को शिक्षा मुहैया कराने या स्कूल चलाने की ज़िम्मेदारी भी सरकार की है। यदि कर सरकार ले और फिर यह कहे कि स्कूल बाज़ार चलाए या कोई और चलाए उचित नहीं है।

यदि निजी उद्यमी या बाजार द्वारा शिक्षा का संचालन किया जाएगा तो निश्चित रूप से स्कूलों के मानकों में फ़र्क़ होगा और इसका प्रभाव समाज में सभी को मिलनेवाले अवसरों में दिखाई देगा। समाज में भी स्तरीकृत व्यवस्था को और बढ़ावा मिलेगा। अभी सरकार में निजी स्कूलों को बंद करने की ताकत नहीं है। बहुत ज़ोर–शोर से एक समिति बनाई गई है, 'समान स्कूल प्रणाली' को लागू करने के लिए। बहुत सशक्त रिपोर्ट है, लेकिन वह लागू नहीं होती क्योंकि उनमें बचने के पेंच डलवाए गए हैं जिससे वह बच सके। मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग यह जानता है कि अच्छी शिक्षा, एक ख़ास तरह की शिक्षा उसके वर्चस्व को बनाए रखने के लिए ज़रूरी है। उसे अलग दिखना है। उसे शिक्षा की छलनी में से छनकर आना है।

इसके लिए यह ज़रूरी है कि वह अपने बच्चों को अलग शिक्षा दे। यदि 'समान स्कूल प्रणाली' लागू कर भी दी जाएगी तो उन्हें दिक़्क़त नहीं होगी क्योंकि वे अपने घर पर ट्यूटर रख लेंगे। जब तक हमारी अर्थव्यवस्था में किसी व्यक्ति को दो लाख रुपये महीने मिलेंगे और उसी तरह के ही किसी अन्य को दो हजार रुपये महीने तब तक यह नहीं हो सकता कि इस देश के सभी बच्चे एक जैसी शिक्षा प्राप्त करें।

कम्प्यूटर कम्पनियों के पास प्रदेश की शिक्षा को चलाने के लिए, निर्देशित करने के लिए या उस पर टिप्पणी कर नियन्त्रित करने के लिए कोई विशेषज्ञता नहीं है। यदि ऐसे निजी संस्थान जो कि विशेषज्ञता उत्पन्न करने, शिक्षा की व्यवस्था चलाने में मदद करना चाहते हैं तो इसमें किसी तरह की दिक़्क़त नहीं होनी चाहिए। मुझे मालूम नहीं है कि व्यापक तौर पर कॉरपोरेट में उतनी समझ है या नहीं कि वह शिक्षा की समझ उत्पन्न करने के लिए पैसा निवेश करेगा। शिक्षा के लिए संदर्भ समूह खड़ा करना भारी निवेश की मांग करता है। जब सरकार इस क्षेत्र में निवेश करने से भाग रही है तो फिर उद्योगपति इसमें क्यों निवेश करेगा। राज्य शैक्षिक अनुसंधान परिषद् और ज़िला शिक्षा संस्थानों में लोग नहीं हैं। उनका समर्थन करने के लिए सरकार पैसा ख़र्च नहीं करना चाहती। जब सरकार यह नहीं करना चाहती तो फिर वह निजी क्षेत्र से इन क्षेत्रों में पैसा ख़र्च करने की उम्मीद कैसे कर सकती है। जो कुछ कॉरपोरेट इस तरह के काम में मदद कर रहे हैं, उनका कार्य क़ाबिले तारीफ है। वे सर्वसधारण की शिक्षा की बेहतरी के लिए काफ़ी प्रयास कर रहे हैं।

बाज़ार के हाथों में सभी व्यवस्थाओं को खुला छोड़ने का काम अर्थव्यवस्था में किया गया है। हमें नहीं मालूम उसका क्या नतीजा होगा। भारत में पूरी तरह से ग़ैर नियंत्रित बाज़ार नहीं है। कुछ चीज़ें नियंत्रण में हैं और कुछ नियंत्रण में नहीं हैं। लेकिन इस खुलेपन का भी पूरा असर हमने देखा नहीं है।

शिक्षा एक सामाजिक शिक्षा व संवैधानिक सरोकार है। यदि कोई कहे कि मैं दर्जी बनाना चाहता हूं या बढ़ई बनाना चाहता हूं या ड्राइवर बनाना चाहता हूं तो मुझे लगता है कि इसे नियंत्रित करने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन यदि आप नागरिक बनाना चाहते हैं तो उसे नियंत्रित करना ही पड़ेगा। जो लोग यह बात करते हैं कि शिक्षा को नियंत्रित नहीं करना चाहिए वे लोग शिक्षा को कुछ और ही समझते हैं। इसीलिए उन्हें लगता है कि शिक्षा को नियंत्रित करने की ज़रूरत नहीं है। इसका दूसरा पहलू यह भी हो सकता है कि हमारे यहां नियंत्रण का ढांचा इतना सड़ गया है कि लोग सोचते हैं कि इसे तो हटा देना चाहिए। लेकिन यह तो हल नहीं होगा। यदि किसी के गले पर फोड़ा हो जाए तो गला थोड़े ही काटा जाएगा। इसी तरह की बात शिक्षा में चल रही है कि यदि ढांचा नहीं चल रहा तो ढांचा ही हटा दो। उसे सही करने का प्रयास करना चाहिए। इसे सुधारने के लिए एक बुनियादी सिद्धान्त यह है कि प्रजातंत्र और अपने ढांचे के प्रति विश्वास हो। इसके लिए विकेन्द्रीकृत व्यवस्था होना और अलग–अलग तरह के मॉडल होना ज़रूरी है।

---

**हृदय कांत दीवान**– विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर

यह लेख दिगंतर द्वारा प्रकाशित पत्रिका विमर्श के अंक जनवरी–फरवरी 2008 से साभार किया गया है।

पड़ताल

# बुनियादी शिक्षा : एक विश्लेषण

साधना सक्सेना

बुनियादी शिक्षा (नई तालीम या बेसिक एजुकेशन) का विचार भारतीय समाज के सामाजिक और आर्थिक ढांचे में परिवर्तन के गांधी के दर्शन के साथ ही उठा तथा पनपा। यह विचार शिक्षा व्यवस्था को भीतर से सुधारने के लिए नहीं था। यह अलग विचार था बल्कि अंग्रेजी शिक्षा का विकल्प था भारत की शिक्षा व्यवस्था को गांधी के आदर्शों के अनुरूप बनाने का। ''बुनियादी शिक्षा या नई तालीम न केवल शिक्षा के पुनर्गठन का प्रयास था वरन् संपूर्ण भारतीय समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन लाने के लिए एक बड़ा कदम था। वर्धा में इसकी रूपरेखा तैयार करते समय गांधी ने शायद भविष्य की शिक्षा का एकमात्र आदर्श रूप बनाना नहीं चाहा होगा। लेकिन शीघ्र ही कतिपय प्रांतों में कांग्रेस के सत्तारूढ़ हो जाने पर उनके लिए आवश्यक हो गया कि वे देश को एक कम ख़र्चीली जन शिक्षा उपलब्ध करा सकें। तत्कालीन वास्तविकताओं के संदर्भ में इस वृहद् समस्या का एकमात्र व्यावहारिक हल था इस आत्मनिर्भर, श्रमकेन्द्रित बुनियादी शिक्षा को यथासंभव लागू किया जाना। डॉ. जाकिर हुसैन और सैयदन ने इसके समर्थन में अपनी राय देकर गांधी का पक्ष मज़बूत बनाया। यद्यपि उनका मुख्य उद्देश्य समाज का नवनिर्माण नहीं बल्कि शिक्षा का मानवीकरण और व्यक्तिवाद का वर्चस्व बनाना था।' (शुक्ला, 1979 : 17, अनुवाद व सारांश रा.र.ह.)।

इस प्रकार बुनियादी शिक्षा के पक्ष में तीन तरह की ताक़तें काम कर रही थीं : एक आदर्श समाज की चाह, नई उभरती हुई भारतीय प्रशासनिक तंत्र की तत्कालीन आर्थिक आवश्यकताएं (बुनियादी शिक्षा का आत्मनिर्भरतावाला पहलू) तथा व्यक्ति की महत्ता बनाए रखने का आग्रह। बुनियादी शिक्षा में ज़ोर शारीरिक श्रम और अवलोकन का प्रशिक्षण, सामाजिक परिवर्तन और ऐसे नए मूल्यों को विकसित करने पर था जो प्रजातांत्रिक समाज की स्थापना के लिए आवश्यक हैं। गांधी द्वारा शिक्षा में श्रम को केन्द्रीय स्थान देने का आग्रह भी अधिक विवादास्पद नहीं बना। इन बुनियादी सिद्धान्तों के कारण नई तालीम को काफ़ी लोगों का समर्थन मिला। पर ऐसा नहीं था कि सभी लोग सभी सिद्धान्तों से सहमत रहे हों। गांधीवादी और अन्य शिक्षाविदों के बीच इस बात को लेकर मतभेद था कि सीखने की प्रक्रिया में किस हद तक कर्म (शारीरिक श्रम समेत) को केंद्रीय माना जाए और काम में किस प्रौद्योगिकी का उपयोग हो। यह भी स्पष्ट था कि आत्मनिर्भरता जैसा महत्त्वपूर्ण मुद्दा विद्यार्थियों द्वारा उत्पादित वस्तुओं को सुनिश्चित बाज़ार उपलब्ध कराने के लिए पूरी तरह से राजसत्ता के सहयोग पर निर्भर था।

हालांकि गांधी बाल मज़दूरी के ख़िलाफ़ थे लेकिन बच्चों के काम करने के ख़िलाफ़ वे नहीं थे। बल्कि बाल श्रम या ''श्रम प्रशिक्षण'' को शिक्षा का हिस्सा बनाना तो बुनियादी शिक्षा की केंद्रीय अवधारणा थी ही। पद्धति के स्तर पर बुनियादी शिक्षा का अर्थ था कि शिक्षा के सब विषय श्रम और हस्तशिल्प की गतिविधियों से निकलें। गांधी का विचार था कि

प्राथमिक शिक्षा के मुफ़्त सर्वव्यापीकरण के ख़र्च का कम से कम कुछ हिस्सा तो बच्चों के श्रम से निकलना चाहिए। गांधी को लगता था कि भारत जैसे ग़रीब देश में सभी बच्चों के लिए मुफ़्त प्राथमिक शिक्षा देने के लिए स्रोत जुटा पाना संभव नहीं होगा, न ही अधिकतर बच्चों के माता–पिता कभी फ़ीस दे पाएंगे। इसलिए यह ज़रूरी है कि बच्चे अपनी शिक्षा को आंशिक या पूरी कीमत अपने श्रम से चुकाएं। उनका मानना था कि इससे दो मक़सद पूरे होंगे। एक, बच्चे श्रम का मूल्य पहचानेंगे और दूसरा, इस प्रकार हमारे जैसे ग़रीब देश के लिए ऐसी शिक्षा बच्चों को ऐसा कौशल दे पाएगी जिससे वे आत्मनिर्भर बनेंगे (कृष्णा, 1996 : 25)। उनका कहना था कि सारी शिक्षा किसी हस्तशिल्प या उद्योग सिखाने के माध्यम से ही दी जानी चाहिए। हरिजन (30 अक्टूबर 1937) में उन्होंने लिखा था, ''मैं शिक्षक का ख़र्चा उसके विद्यार्थियों के श्रम के उत्पाद से निकले इसका बहुत इच्छुक हूं क्योंकि मैं आश्वस्त हूं कि हमारे करोड़ों बच्चों को शिक्षित करने का कोई और तरीक़ा नहीं है'' (कृष्णा, 1996 : 26)।

स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद कांग्रेस के सत्ता में आने पर शायद बुनियादी शिक्षा को कम पैसों में जन शिक्षा उपलब्ध कराने की समस्या के व्यावहारिक हल के रूप में देखा गया। इसलिए बुनियादी शिक्षा को औपचारिक शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ने का प्रयास किया गया। पर शुक्ला के अनुसार, ''अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था के विरोध के परिणामस्वरूप इस संदर्भ में सबसे बड़े स्तर पर असफल गांधी द्वारा प्रस्तावित बुनियादी शिक्षा योजना थी'' (शुक्ला, 1979 : 2)।

''बुनियादी शिक्षा को असफलताओं का सामना करना पड़ा क्योंकि छात्र उत्तरोत्तर प्रगतिशील औद्योगिक परिवेश के लिए तैयार नहीं हो पाए थे (हस्तशिल्प में दक्षता या महारत हासिल नहीं हो पाती थी); शिक्षण सामग्री और विभिन्न अभिकरणों में पारस्परिक संबंध की तकनीक विकसित नहीं हो सकी थी; सामाजिक ढांचे में जहां अंग्रेजीदां अधिकार तंत्र का वर्चस्व था वहीं बेसिक स्कूलों में छात्र इस भाषा में पर्याप्त दक्षता प्राप्त नहीं कर सके थे। इसी प्रकार श्रमकेंद्रित शिक्षा का वास्तविक जीवन पद्धति से तालमेल नहीं हो सका था। बेसिक शिक्षा में समाज के अभिजात वर्ग की साहित्यिक और कलात्मक अभिरुचियां संतुष्ट नहीं हो सकती थीं'' (शुक्ला, 1979 : 18, अनुवाद और सारांश रा.र.ह.)।

दो वर्ष पहले प्राथमिक शिक्षा पर तैयार रपट सिटिजंस इनीशिएटिव के अनुसार बुनियादी शिक्षा की असफलता के कारण थे :

- अभिजात और सत्ताधारी वर्ग ने इसे शिक्षा के मॉडल के रूप में नहीं स्वीकारा;
- आम जनता ने इस निम्न स्तरीय या सेकेंड रेट शिक्षा, जो स्कूली शिक्षा से भिन्न है, मानकर अस्वीकार कर दिया;
- यह बड़े शहरों में सुविधाभोगी लोगों को ही उपलब्ध कराई जा सकी;
- अंग्रेजी न सिखाई जाने के कारण इसे घटिया माना गया;
- सिखाया जानेवाला हस्तशिल्प पुराना था;
- वास्तव में प्रति विद्यार्थी ख़र्चा ज़्यादा आया और इसके लिए सरकारी पैसा उपलब्ध नहीं था (सिटिजंस इनीशिएटिव, 1996 : 33)।

सुमि कृष्णा के अनुसार, ''भारतीय शिक्षा व्यवस्था ने बुनियादी शिक्षा की अवधारणाओं और कर्म तथा स्कूल के वैकल्पिक रास्तों की दुनिया को नहीं अपनाया जिसकी वकालत महात्मा गांधी और जाकिर

हुसैन जैसे शिक्षाविदों ने की थी। शोषणरहित उत्पादक श्रम को बच्चों की शिक्षा का मूल बनाने के गांधी के दर्शन का आधार वही आर्थिक आदर्श था जिसमें एक गांव उत्पादन की एक आत्मनिर्भर इकाई था। सीमित स्रोतों से स्कूलों के प्रसार का वह एक ऐसा क्रांतिकारी हल था जिसका कोई परीक्षण नहीं हुआ था। लेकिन आज़ाद भारत में जिन राजनीतिज्ञों और प्रशासकों के ऊपर दशकों के विकास के अवरोध को समाप्त करने की ज़िम्मेदारी आई थी उन्हें शायद ऐसे क्रांतिकारी प्रयोग कर भरोसा नहीं था। उन्हें उन रास्तों पर चलना ज़्यादा सरल और सुरक्षित लगा जो अंग्रेजों के समय में स्थापित हो चुके थे। इसीलिए ढांचों में बिना कोई परिवर्तन किए सीधे शिक्षा का प्रसार कर दिया गया। पर साथ ही वे यह भी जानते थे कि गांधी के दर्शन को, उसके प्रतीकात्मक महत्त्व के कारण किसी तरह से राष्ट्रीय नियोजन में शामिल करना ज़रूरी था। इसलिए गांधी का उत्पादक कर्म का विचार सांकेतिक रूप से औपचारिक शिक्षा व्यवस्था में शामिल कर लिया गया और पचास व साठ के दशक में कोई हस्तशिल्प सीखना प्राथमिक शिक्षा का ज़रूरी हिस्सा बना'' (कृष्णा, 1996 : 103)।

शिक्षाविद् प्रो. कृष्णकुमार के अनुसार 1964 में शिक्षा पर गठित कोठारी कमीशन ने, जिसने अपनी रपट 1966 में दी, बुनियादी शिक्षा को पूरी तरह से अस्वीकार किया। कोठारी कमीशन की रपट में बुनियादी शिक्षा में बच्चों को खेती सिखाने की प्रक्रिया को अप्रभावशाली बताया गया और खेती के परंपरागत तरीक़ों को अवैज्ञानिक। इस रपट में खेती के आधुनिकीकरण तथा विज्ञान और तकनालाजी पर ज़ोर दिया गया है। इस तरह से आधुनिक खेती तथा विज्ञान को एक सीमित दायरे में परिभाषित किया गया। इसका मतलब था अमरीका की रासायनिक खाद और कीटनाशक कंपनियों के लिए बाज़ार उपलब्ध कराना और वहां की विकसित पद्धतियों, प्रौद्योगिकी और ज़्यादा उपज देनेवाले संकर बीजों का भारत में अंधाधुंध उपयोग को बढ़ावा देना। प्रो. कुमार के अनुसार इस प्रकार की खेती से अन्न का उत्पादन बढ़ा, लेकिन इसकी काफ़ी बड़ी क़ीमत भी चुकानी पड़ी। इस प्रकार की खेती से बहुत से छोटे और मध्यम किसानों की ज़मीनें बड़े किसानों के हाथों में पहुंची तथा भूमिहीन मज़दूरों की संख्या बढ़ी यानी भूमि की उर्वरता घटी। अधिक सिंचाई से दलदलीकरण बढ़ा। दलहन फ़सलों का उत्पादन घटा क्योंकि ज़मीन दलहन फ़सलें उगाने के लायक नहीं रहीं। उन्नत फ़सलों को उगाने के लिए अधिक पानी की आवश्यकता की आपूर्ति के लिए अधिक कुएं तथा ट्यूबवेल खुदे, बड़ी मात्रा में जंगल काटे गए और बड़े बांध बनाए गए जिससे लाखों लोग विस्थापित हुए (कुमार, 1997)।

इस लेख में प्रो. कृष्णकुमार ने खेती के आधुनिकीकरण का हरित क्रांतिवाले मॉडल पर एक विश्लेषणात्मक टिप्पणी की है। उनका यह भी कहना है कि इन परिवर्तनों को लागू करने के लिए उच्च स्तरीय कृषि विश्वविद्यालय खोले गए। स्पष्ट रूप से इससे बड़े किसानों को ही लाभ पहुंचा तथा उनकी ताक़त को सुदृढ़ किया। कोठारी कमीशन की रपट के दो अत्यंत महत्त्वपूर्ण पहलुओं–बुनियादी शिक्षा की अवहेलना और इसके साथ ही अमरीका में विकसित हरित क्रांति के मॉडल की पैरवी– की तरफ प्रो. कृष्ण कुमार ध्यान आकर्षित करते हैं। अमरीका में हरित क्रांति के दुष्परिणाम साठ के दशक तक सामने आने शुरू हो गए थे। रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाइयां आदि बनानेवाली कंपनियों को नए बाज़ारों की तलाश थी और भारत को अधिक खाद्य सामग्री की। इसलिए यहां यह पैकेज आया। लेकिन क्या प्रो. कृष्ण कुमार यह भी सुझा रहे हैं कि भारत की शिक्षा के लिए बुनियादी शिक्षा एक कारगर,

वैकल्पिक मॉडल हो सकता था? क्या इस मॉडल में भूमिहीन और भूस्वामियों के बीच के बुनियादी टकराव, भूमि के असमान वितरण के कारण पनपते असंतोष से जूझने की कोई योजना या सुझाव थे? क्या खेती पर आधारित शिक्षा के लिए ऐसे मॉडल की आवश्यकता नहीं थी जो न केवल किसानों और मज़दूरों के ज्ञान को आधार बनाए बल्कि उस समाज की आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक परिस्थितियों, टकरावों, गैरबराबरी और विरोधाभासों को भी मद्देनज़र रखता। बुनियादी शिक्षा का व्यावहारिक रूप से वर्धा के अलावा कहां लागू हुआ और सफल हुआ यह एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न है तथा इसकी भी पड़ताल होना आवश्यक है।

आत्मनिर्भरता बुनियादी शिक्षा के वर्धा मॉडल का एक महत्त्वपूर्ण पहलू था। प्रो. शुक्ला के अनुसार इसी कारण से बी.जी.खेर समिति ने 1944 में इस मॉडल को स्वीकार किया था। इस समिति को लगता था कि इस मॉडल से जन शिक्षा का उद्देश्य कम ख़र्चे में पूरा किया जा सकता है। बी.जी. खेर समिति जिसका गठन केंद्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने 10 वर्षों में प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण का प्रस्ताव तैयार करने के लिए किया था, जिसे फिर संविधान की धारा 45 में '14 वर्ष की उम्र तक शिक्षा' शीर्षक के तहत रखा गया, वह गांधी की वर्धा की बुनियादी शिक्षा की योजना के आत्मनिर्भरतावाले पहलू पर निर्भर थी और बाद में ऐसा अनुभव हुआ कि इस प्रकार शिक्षकों का वेतन और सामग्री की क़ीमत उगाहना संभव है, ख़ास तौर से वरिष्ठ बुनियादी शालाओं में तथा बड़ी कक्षाओं में और भी ज़्यादा (शुक्ला, 1997 : 1826)। लेकिन शुक्ला स्वयं ही बताते हैं कि बी.जी. खेर ख़ुद बच्चों के श्रम से स्कूल का ख़र्चा निकालने को लेकर बहुत इच्छुक नहीं थे (शुक्ला, 1997 : 1830)।

प्रो. शुक्ला ने 1976 और 1979 में बुनियादी शिक्षा की असफलता के कारणों में औपचारिक शिक्षा जैसे ढांचों का न होना बताया था यानी कक्षाओं में लिंकेज, अंग्रेजी भाषा, निश्चित पाठ्यक्रम, पाठ्य पुस्तकें, प्रशिक्षित और पूर्णकालिक शिक्षक आदि का न होना। 1997 में वे बुनियादी शिक्षा के आत्मनिर्भरता वाले पहलू से जुड़े ज़्यादा बुनियादी तनावों की ओर इशारा करते हैं। हालांकि वे इसे स्पष्ट रूप से अपने पहले के विश्लेषण के संदर्भ में नहीं करते हैं। 1998 में जब पाठकों को 1976 से 1997 तक लिखे एक साथ उपलब्ध हों तब विश्लेषण के ज़ोर में यह अंतर स्पष्ट झलकता है। इसके अनुसार, 'परन्तु इस आपसी संपूरकता और सुसंगतता के साथ हम लगातार एक तनाव भी देखते हैं। यह तनाव बच्चों के श्रम से आर्थिक उत्पादन, उससे शिक्षा की संभावनाएं, शिक्षा की क़ीमत ख़ास तौर से यह मानकर चलते हुए कि शिक्षक का वेतन कम होगा– बच्चों की शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों के बीच प्रतिस्पर्धा के बीच भी दिखता है– जैसे बौद्धिक विकास, शारीरिक और सामाजिक कुशलताएं और मूल्य तथा संस्कृति आदि के बीच दिखता है जो आज़ादी के बाद के दो दशकों की चर्चाओं में भी दिखता था' (शुक्ला 1997 : 1826)।

ऐतिहासिक रूप से यह समझना जरूरी है कि बुनियादी शिक्षा जो चाहे लिंकेज, गुणवत्ता या आर्थिक आत्मनिर्भरता जैसी अपेक्षाएं पूरा न कर पाने के कारण पचास के दशक में असफल रही जिसे, 'हमारे देश में शिक्षा की औपनिवेशिक विरासत दूर करने का एक मात्र महत्त्वपूर्ण प्रयास' (कुमार, 1996 : 2369) माना गया, यह 1960 के दशक में (कोठारी कमीशन की रिपोर्ट में) और हाशिए पर क्यों चली गई? क्या कारण मात्र वही हैं जो प्रो. कृष्णकुमार ने अपने लेख (कुमार, 1996) में बताए हैं या बुनियादी शिक्षा के दर्शन में भी कुछ निहित था जिससे उसका प्रसार और सफलता, स्वतंत्रता मिलने के

पश्चात् भारत की उभरती आर्थिक विकास की नीतियों के तहत संभव ही नहीं थी? बुनियादी शिक्षा की अवधारणा कई शिक्षाविदों द्वारा आज भी एक ऐसे आदर्श के रूप में प्रस्तुत होती है और उम्मीद जताई जाती है जैसे यदि इस पर उचित ध्यान दिया जाता तो शायद प्राथमिक शिक्षा की स्थिति उतनी ख़राब और निरर्थक न होती जितनी आज है। पर ऐसी मान्यता का ठोस आधार क्या है? क्या भारतवर्ष का अभिजात्य वर्ग अपने बच्चों के लिए बुनियादी शिक्षा की अवधारणा कभी स्वीकार करता या क्या बुनियादी शिक्षा की बात केवल जन शिक्षा के संदर्भ में थी? क्या बुनियादी शिक्षा को इलीट पब्लिक स्कूलों के साथ ग़रीबों के लिए दोयम दर्जे की शिक्षा के रूप में स्थापित होना था या पब्लिक और प्राइवेट स्कूलों के ख़त्म करने की बात थी जैसा कि शायद चीन की सांस्कृतिक क्रांति के दौरान किया गया– पुराने संस्थाओं को समाप्त करके क्रांति के बाद उन्हें नए सिरे से पुनर्गठित किया गया। बुनियादी शिक्षा के संदर्भ में ऐसा कभी कोई विचार भी था, इतिहास में यह दिखता नहीं है। बल्कि प्रो. कृष्ण कुमार ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक राज, समाज और शिक्षा के अध्याय ''शिक्षा और विषमता'' में साफ़ लिखा है, ''आज़ादी के बाद भी पब्लिक स्कूलों की रीति–नीति और उनके ढांचों में कोई परिवर्तन नहीं आया। धनी परिवारों के बच्चों के अलावा वे बड़े अधिकारियों तथा मंत्रियों के बच्चों के शिक्षा के अड्डे बन गए।... सरकार ने 'पब्लिक' स्कूलों के प्रति कभी कड़ा रवैया नहीं अपनाया। सच तो यह है कि सरकारी स्तर पर 'पब्लिक' स्कूलों के संबंध में कोई गंभीर विवाद नहीं उठा' (कुमार, 1990 : 50)। प्रो. कृष्ण कुमार का कहना कि 'पब्लिक स्कूल मुख्य धारा से अलग थे। ये समाज के समृद्ध तथा पिछड़े वर्गों का अंतर पुख़्ता कर रहे थे। लेकिन देश के सत्ताधारी, नौकरशाह और राजनीतिज्ञ आम तौर पर यहीं के शिक्षार्थी थे/हैं।

एक बार एक विद्यार्थी ने प्रश्न किया था कि गांधी और माओ के शिक्षा दर्शन में क्या अंतर है? दोनों ने ही शारीरिक श्रम के महत्त्व की बात की और शिक्षा और उत्पादन द्वारा स्थापित करने की भी। यह अंतर काफ़ी बुनियादी स्तर का है। गांधी के दर्शन में यह निहित है कि ग़रीब लोगों को अपनी शिक्षा का ख़र्चा ख़ुद अपने श्रम के उत्पाद से निकालना होगा। इस प्रकार विद्यार्थी न केवल श्रम का मूल्य समझेंगे बल्कि शिक्षा के बाद वे किसी हस्तशिल्प में कुशलता हासिल कर चुके होंगे। गांधी शिक्षा में ज़बरदस्ती के ख़िलाफ़ थे। चाहे ऐसा गांधी ने सोचा हो या नहीं, पर बुनियादी शिक्षा की अवधारणा से तीन प्रमुख बातें उभरकर आती हैं। पहली, राजसत्ता के ऊपर जन शिक्षा की प्रमुख ज़िम्मेदारी नहीं पड़ती। दूसरी, श्रमकेंद्रित शिक्षा और श्रम करते हैं, श्रम बेचकर ही जीवनयापन करते हैं क्योंकि स्थापित ढांचों और संस्थाओं पर चोट का सवाल था ही नहीं। तीसरी, अभिजात वर्ग को उत्पादन में जुड़ना, श्रम का मूल्य जानना आदि जैसा आग्रह कहीं नहीं दिखता। माओ के दर्शन को पुराने ढांचों को तोड़ने तथा सख़्ती करने से परहेज़ नहीं था जैसा कि सांस्कृतिक क्रांति के दौरान हुआ। एक और महत्त्वपूर्ण अंतर यह भी है कि माओ इन परिवर्तनों की बात चीन में जन क्रांति के बाद की जब देश के बुनियादी आर्थिक ढांचे को भी पुनर्गठित किया जा रहा था। हालांकि आज़ादी के बाद भारत में भी कुछ मूलभूत परिवर्तन के प्रयास हुए जैसे भूमि सुधार। पर एक तो ये शीघ्र समाप्त हो गए और दूसरा विकास तथा आर्थिक नीतियां भी आमजन के पक्ष में नहीं थीं।

---

**साभार**– शिक्षा और जन आंदोलन, प्रकाशक : ग्रंथशिल्पी

# जीवन के लिए शिक्षा

**मरिया मांटेसरी**

इसे स्पष्ट करने के लिए कि जन्म के साथ आरंभ होनेवाली ''जीवन के लिए शिक्षा'' से हमारा क्या तात्पर्य है, हमें कुछ अधिक विस्तार से समस्या को समझना होगा। संसार के महान् नेता गांधीजी ने कुछ समय पूर्व कहा था कि जीवन और शिक्षा का क्षेत्र समान होना चाहिए। यही नहीं, उन्होंने यह भी कहा कि शिक्षा मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह जीवन की रक्षा कर सके। ऐसी बात पहली बार किसी सामाजिक और आध्यात्मिक नेता ने कही है। दूसरी ओर, विज्ञान ने भी इस बात का अनुमोदन किया है और बीसवीं शताब्दी के प्रारंभ से ही वह इसे प्रमाणित करने का प्रयास करने का प्रयास कर रहा है कि समस्त जीवन के लिए शिक्षा का विस्तार व्यवहार में संभव हो सकता है। फिर भी किसी शिक्षा मंत्रालय ने इस विचार को अपनाने का प्रयास नहीं किया।

वर्तमान शिक्षा की अनेक पद्धतियां, लक्ष्य और साामाजिक उद्देश्य हैं, फिर भी यह कहा जा सकता है कि वह स्वयं जीवन का बिलकुल विचार नहीं करती। विभिन्न देशों में अनके प्रणालियां औपचारिक रूप से उपयोग में लाई जा रही हैं, परंतु उनमें से एक भी ऐसी नहीं है जो व्यक्ति की जन्म से ही सहायता का प्रयास करे और उसके विकास की सुरक्षा कर सके। आजकल शिक्षा की जैसी अवधारणा है, वह हमारे शारीरिक और सामाजिक जीवन– दोनों से ही पृथक् है। जो भी शिक्षा की दुनिया में प्रवेश करते हैं वे प्रायः समाज से कट जाते हैं। विश्वविद्यालय के छात्रों से आशा की जाती है कि वे अपने कॉलेज के नियमों के अनुसार चलेंगे और अधिकारियों द्वारा निर्धारित पाठ्यक्रम का पालन करेंगे। परंतु कुछ समय पहले तक यह बात कही जा सकती थी कि विश्वविद्यालय, इन छात्रों के शारीरिक और सामाजिक जीवन में रत्ती भर रुचि नहीं लेता है। यदि कोई छात्र भूखा रहता है या उसे कम दिखाई या सुनाई देता है और इसके कारण पढ़ाई में उसकी रुचि कम हो जाती है, तो उसे बस नंबर कम दिए जाते थे। यह सच है कि शारीरिक दोषों और कमज़ोरियों पर अब ध्यान दिया जाने लगा है, परंतु यह कवेल स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से ही। इस पर कभी किसी ने प्रश्न नहीं किया है कि ग़लत और अनुपयुक्त शिक्षा प्रणाली के कारण क्या छात्र के दिमाग़ के बिगड़ने की संभावना नहीं है। क्लैपारीड ने कई शिक्षा के आंदोलन पर जोरदार समर्थन किया था। उसने पाठ्यक्रम में निर्धारित विषयों की संख्या के बारे में जांच की और प्रयत्न किया कि वह संख्या कम हो जाए, जिससे बच्चे को इतनी दिमाग़ी थकान महसूस न हो। परंतु इससे इस समस्या का समाधान नहीं होता कि छात्र बिना थकान के संस्कृति के भंडार को कैसे ग्रहण करें। राज्य द्वारा नियंत्रित अधिकांश व्यवस्थाओं में सारा महत्त्व इसी पर होता है कि पाठ्यक्रम पूरा हो जाए। यदि कोई पूर्व स्नातक किसी सामाजिक अन्याय या किसी राजनैतिक समस्या के विरुद्ध आवाज़ उठाता है तो उसे अधिकारियों का यही आदेश मिलता है कि विद्यार्थियों को राजनीति में नहीं

पड़ना चाहिए और अपना ध्यान पढ़ाई में लगाना चाहिए। इसका परिणाम यही होता है कि विश्वविद्यालय से निकलने पर युवावर्ग का दिमाग़ इतना कुंद हो जाता है कि उनकी अपनी सोचने की शक्ति की समाप्त हो जाती है और वे सामयिक समस्याओं पर स्वयं कोई राय नहीं बना पाते।

शैक्षिक संगठन समाज से इतने विमुख रहते हैं मानो समाज की समस्याएं उनके दायरे के बाहर की हों। शिक्षा का संसार से अलग करके जीवन का सामना करने की शिक्षा दी जा रही हो। मान लीजिए विश्वविद्यालय के किसी छात्र को तपेदिक हो जाए और उसकी मौत हो जाए। यह बड़े दुःख और आश्चर्य की बात है कि जिस विश्वविद्यालय के समाज में वह छात्र रह रहा था, उसने उसकी बीमारी के दौरान उस पर कोई ध्यान नहीं दिया, परंतु उसकी मौत पर, उसी विश्वविद्यालय ने अचानक एक प्रतिनिधि उसके दाह संस्कार में भेजा। कुछ स्नातक तो संसार में प्रवेश करते अपना इतना आत्मविश्वास खो चुके होते हैं कि वे अपने लिए कुछ नहीं कर पाते और अपने परिवार तथा दोस्तों पर भार बने रहते हैं। फिर भी हम यह अपेक्षा नहीं करते कि विश्वविद्यालय इन तथ्यों पर ध्यान दें। वह इन सबके के प्रति उदासीन रहता है, क्योंकि उसके नियम ऐसे बनाए गए हैं जो छात्रों को दूसरों की मानसिक समस्याओं से अपने को अलग रखने को कहते हैं, और उन्हें केवल अध्ययन करने और परीक्षा में बैठने की अनुमति प्रदान करते हैं। परीक्षा में सफल हो जाता है उसे डिग्री या डिप्लोमा दे दिया जाता है। यही हमारे समय में शिक्षा संस्थाओं को सबसे उच्च लक्ष्य है। इधर सामाजिक समस्याओं पर शोध करनेवालों को यह ज्ञात हो रहा है कि विश्वविद्यालय के स्नातक तथा स्कूलों से निकले हुए छात्र, जीवन का सामना करने के लिए तैयार नहीं होते। यही नहीं, समाज के लिए उपयोगी कार्य करने की उनकी क्षमता भी कम जो जाती है। आंकड़ों से पता चलता है कि पागलों की, अपराधियों की, तथा पड़ोसियों द्वारा सनकी समझे जानेवालों की संख्या में बहुत वृद्धि हुई है। समाजशास्त्री चाहते हैं कि स्कूल इन बुराइयों को दूर करने की ज़िम्मेदारी ले, परन्तु स्कूलों की तो अपनी एक अलग ही दुनिया होती है जिसमें इन समस्याओं को अलग रखा जाता है। स्कूल इतनी प्राचीन संस्था है कि उसके लिए स्वयं अपनी परंपराओं को तोड़ना बहुत कठिन है। कोई बाहर का दबाव ही उसमें परिवर्तन लाकर उसकी काया पलट कर सकता है, तथा शिक्षा में हर स्तर पर पाए जानेवाले दोषों का उपचार कर सकता है, जिनके कारण छात्रों की इतनी हानि होती है।

---

**साभार–** ग्रहणशील मन, लेखक– मरिया मांटेसरी, प्रकाश : ग्रंथशिल्पी

# शिक्षा में सृजनात्मकता एवं सौन्दर्यबोध

वि.वि. सिंह

सत्र का आरम्भ हुआ था। जूनियर स्कूल (कक्षा 3,4,5) में नई–नई कक्षाओं का गठन हुआ था। ग्रीष्मावकाश के बाद बच्चों के पुनरागमन से स्कूल में एक चहल–पहल नज़र आ रही थी। ऐसे में नए प्रवेशार्थी बच्चे नई–नई यूनिफ़ार्म पहने, अपने बस्ते लिए अलग–अलग से कुछ घबराए से चल फिर रहे थे। छात्रावासी विद्यार्थी शहर के बाहर से आए थे, जिनमें से अधिकतर ग्रामीण परिवेश से थे, सारे माहौल को अजनबी निगाहों से भांपने की कोशिश कर रहे थे। इन बच्चों का, जितनी जल्दी हो यहां के वातावरण में समायोजन हो जाए, उतना ही अच्छा होगा। दूसरे बच्चों से उनकी बातचीत हो, वे मिल–जुलकर रहें, कुछ पूछना चाहें तो भी आपस में पूछ सकें, यह सोचकर अगले दिन के लिए हमने एक गतिविधि सोची।

स्कूल के पास में ही स्थित झील के किनारे से काली मिट्टी मंगवाई गई। स्कूल परिसर में विद्यमान बड़े से छायादार इमली के वृक्ष के नीचे 1 मीटर x 1 मीटर का एक गड्ढा खोदा गया और उसमें वह मिट्टी डालकर 3–4 बाल्टी पानी डाल दिया गया।

अब अगले दिन हर कक्षा के बच्चे एक बार वहां ले जाए गए, शिक्षिका ने बच्चों से कहा, ''इस गीली मिट्टी से तुम जो कुछ बनाना चाहो, बना सकते हो।'' कुछ पुराने बच्चों ने पहल की और मिट्टी हाथ में लेकर कुछ–कुछ आकृतियां देने लगे। उन्हें देखकर नए बच्चे भी आगे बढ़े और कुछ ही देर में वे सबके साथ हिल–मिलकर सृजन से जुड़ गए। किसी ने पशु आकृति, तो किसी ने गाड़ी या बर्तन बनाया तो किसी बच्चे ने क्रिकेट का बैट–बॉल तैयार किया। उनके चेहरों पर आए आत्मसंतोष व आनन्द के भाव अतुलनीय थे। अब नए और पुराने बच्चों में कोई अन्तर नहीं दिख रहा था।

पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक कक्षाओं के लिए समय चक्र में एक कालांश संगीत हेतु निर्धारित था। इस कालांश में सब बच्चे मिलकर समूह गीत गाते और आनन्दित होते। मैंने किसी भी बच्चे को इस समय चुप रहते नहीं देखा। कुछ ज़ोर–ज़ोर से खुलकर गाते, कुछ धीरे, पर गाते सभी थे। पूर्व प्राथमिक स्तर पर कक्षा अध्यापिका हाव–भाव भी करतीं और बच्चे यथासंभव उनका अनुकरण करते।

लगभग 20–30 मिनिट बाद संगीत अध्यापिका दूसरी कक्षा में चली जातीं। इस सम्बन्ध में शिशु कक्षा के एक बच्चे की मुझे याद आती है। उसे संगीत इतना प्रिय था कि वह अपनी कक्षा में न बैठकर जिस कक्षा में संगीत का अभ्यास चल रहा होता, वहां जाकर खड़ा हो जाता। चूंकि हमलोग बच्चों को अपनी रुचि अनुसार दूसरी कक्षाओं में जाने से नहीं रोकते, इसलिए बच्चा अलग–अलग कक्षाओं में गायन में सम्मिलित होता।

पूर्व प्राथमिक एवं प्राथमिक स्तर तक बच्चों को संगीत सीखने का पर्याप्त समय मिलना चाहिए जिससे वे 10–20 गाने सीख जाएं और कभी भी अकेले में या समूह में गा सकें। इस स्तर पर गानों का चयन भी महत्त्वपूर्ण है। गाने के भाव वे समझ सकें, भाषा सरल हो, शब्दों से वे भली भांति परिचित हों और विषय उनके आस–पास के पर्यावरण से

सम्बन्धित हों, साथ ही रोचक हों। मुझे याद है एक गाना था 'बंदर मामा की शादी में पहुंचे सभी बराती' और इसमें बरातियों में विभिन्न पशु–पक्षियों का ज़िक्र आता था। बच्चे इसको समूह में गाकर अत्यधिक आनन्दित होते थे।

इसी प्रकार नृत्य में जब सभी बच्चे मिलकर विभिन्न भाव–भंगिमाओं के साथ अंग संचालन करते हैं तो सभी को यह रुचिकर लगता है।

छोटी उम्र में बच्चों को ऐसे मौक़े नहीं मिलते तो अक्सर देखा गया है कि बड़े होने पर उनमें शर्म या संकोच का भाव विकसित हो जाता है।

कुछ विद्यालयों में नृत्य, संगीत या नाटक का अभ्यास केवल वार्षिकोत्सव, स्कूल के स्थापना दिवस या अन्य किन्हीं जलसों की तैयारी के समय करवाया जाता है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 में यह स्वीकारा गया है। ''कला के विविध माध्यम और स्वरूप बच्चों को खेल–खेल में तथा विषयबद्ध रूप में विकसित होने में मदद करते हैं, उन्हें अभिव्यक्ति के कई रास्ते सिखाते हैं। संगीत, नृत्य और नाटक विद्यार्थियों के आत्मबोध, उनके ज्ञानात्मक और सामाजिक विकास में सहायक होते हैं। पूर्व–प्राथमिक और प्राथमिक स्तरों पर ये सभी कलाएं बेहद महत्त्वपूर्ण हैं।

बच्चे भाषा, प्रकृति के रूपों, स्वयं की और अन्य की समझ आदि को कला के माध्यम से आसानी से विकसित कर सकते हैं। कला की प्रकृति ही ऐसी होती है कि सभी बच्चे उसमें भागीदारी कर सकते हैं।''

हमारे विद्यालय में एक बड़ा अच्छा नियम था नर्सरी स्कूल, जिसमें पूर्व प्राथमिक कक्षाओं के अतिरिक्त कक्षा 1 व 2 भी शामिल थीं, के वार्षिकोत्सव में सभी कक्षाओं के सभी बच्चों को विभिन्न आयटम्स के माध्यम से मंच पर आने का अवसर दिया जाता था। इसलिए कई बार कुछ आयटम्स का स्तर उतना अच्छा नहीं भी होता, जो शायद कुछ चयनित बच्चों द्वारा प्रदर्शन से होता है। पर हमलोगों का यह मानना था कि इस स्तर पर सभी बच्चों को सृजनात्मक अभिव्यक्ति के अवसर अवश्य मिलने चाहिए, प्रति शनिवार को दो कालांशों मे आयोजित कार्यक्रम में बच्चों को इस तरह के भरपूर अवसर मिलने से उनमें 'स्टेज कोन्शेसनेस' नहीं दिखाई देती।

यह भी कोशिश रहती कि बच्चे विभिन्न भाषाओं के गीत सीखें। इसी प्रकार विभिन्न राज्यों के नृत्य करने से बच्चों का देश की विविध कलात्मक परम्पराओं से परिचय हो जाता। किसी वर्ष बच्चे पंजाब का गिद्धा या भांगड़ा करते तो किसी साल महाराष्ट्र का लावणी या कोई पहाड़ी नृत्य करते। गुजरात का गरबा तो लगभग सभी बच्चे सीख जाते। कुछ बच्चे नृत्य के आयटम विशेष में न भी होते तो भी वे उसका रसास्वादन करते साफ़ नज़र आते।

नाटक में बहुत बच्चों की भागीदारी नहीं हो पाती किन्तु उसके अभ्यास (रिहर्सल) देख–देखकर अधिकतर बच्चों को उसके संवाद याद हो जाते। फिर कक्षा स्तर पर कुछ पाठों के नाटकीकरण से काफ़ी बच्चों को इस तरह के अवसर मिल जाते।

मुझे याद है एक बार वार्षिकोत्सव के समय एक नाटक में मुख्य भूमिका निभानेवाले बच्चे के अचानक बीमार पड़ जाने पर चार बच्चे खड़े होकर बोले कि उन्हें सब संवाद याद हैं और वे इस भूमिका को आसानी से कर सकते हैं।

बहुत छोटे बच्चों को जब वे पेन्सिल पकड़ना भी नहीं जानते या औपचारिक लेखन शुरू नहीं किया जाता उस समय भी उन्हें कला के माध्यम से अभिव्यक्ति के अवसर दिए जाते। बच्चों के लिए फिंगर पेंटिंग, स्प्रे पेंटिंग बहुत कारगर है। उंगली को रंग में डुबोकर काग़ज़ पर आड़ी तिरछी लकीरें खींचना बच्चों को रुचिकर लगता है और वे उसके अर्थ भी स्पष्ट करते हैं।

इसी तरह रबिंग्स भी एक रोचक गतिविधि है। काग़ज को किसी खुरदुरी चीज़ पर रखकर बच्चा वैक्स कलर या क्रेयान से रगड़ता है और जो डिजाइनें बनती हैं, उन्हें देखकर बच्चे स्वयं आनन्द की अनुभूति करते हैं। एक–दूसरे के चित्र देखने से उन्हें नए विचार भी मिलते हैं। बच्चे ऐसी खुरदुरी चीज़ें जैसे खिड़की की जाली, कुर्सी की बेंत आदि ढूंढ–ढूंढ़कर उन पर रबिंग्स बनाकर कुछ नया करने या उपलब्धि के भाव से खुश होते।

रंगीन काग़ज़ों को मनचाही आकृतियों में काटना, चिपकाना या उन्हें मोड़कर अलग–अलग चीज़ें यथा नाव, हवाई जहाज, बंदूक, गेंद आदि बनाना अपने आपमें सुखद है। बच्चा इन गतिविधियों के माध्यम से रचनात्मकता से जुड़ता है और स्वयं कुछ कर पाने का अहसास पाता है।

कठपुतली भी कला का एक सशक्त माध्यम है। कठपुतली का धागे से संचालन बच्चों के लिए कुछ कठिन होता है। अतः छोटी आयु में दस्ताना पुतली का प्रयोग उत्तम है। बच्चे संवाद बोलकर और कठपुतली को हिला–हिलाकर आनन्दित होते हैं और देखनेवाले भी भरपूर आनन्द लेते हैं। पंचतंत्र की कहानियों को जिसके पात्र आम तौर पर पशु–पक्षी होते हैं, कठपुतली के माध्यम से करना बच्चों के लिए आनन्ददायी अनुभव होता है।

कोलाज में अलग–अलग तरह की चीज़ों को चिपकाकर कोई कलाकृति का रूप दिया जाता है। छोटे बच्चों के लिए यह भी बड़ा रोचक होता है। तरह–तरह के बीज, सूखे हुए फूल, पत्ते या अन्य अनावश्यक या निरर्थक वस्तुओं का संकलन बच्चे स्वयं करते। फिर इनको विभिन्न आकृतियों में चिपकाकर कोई कलाकृति का रूप देते। इसमें बच्चों की मौलिकता एवं कल्पनाशीलता साफ़ नज़र आती।

प्रकृति से बच्चों का सामंजस्य स्थापित हो, वे उगते–डूबते हुए सूरज, टिमटिमाते हुए तारों, घटते–बढ़ते चांद, चिड़ियों के कलरव, खिलते हुए फूलों, बरसती हुई बूंदों या बादलों, तितलियों या चिड़ियों को देखकर, सौंधी मिट्टी की ख़ुशबू, बहते पानी की कल–कल से आनन्द प्राप्त कर सके। इस हेतु समय–समय पर चर्चा और प्रकृति का सामीप्य ज़रूरी है तभी उनमें सौन्दर्यबोध का विकास होगा और यह जीवन पर्यन्त चलेगा।

चित्रकला हेतु कालांश आम तौर पर सभी विद्यालयों में होता है, जिसमें शिक्षक कोई चित्र श्यामपट्ट पर बनाकर वैसा ही चित्र ड्राइंग कॉपी में बनाने के निर्देश देते हैं। कुछ विद्यालयों में चित्रकला के अभ्यास की पुस्तकें भी चलती हैं। इनमें बने चित्रों के अंदर रंग भरना होता है या इनमें बने चित्रों की अनुकृति बनाकर उसी के अनुरूप रंग भरना होता है। मैं सोचती हूं यह बच्चों की सृजनात्मकता को कितना सीमित कर देता है।

जहां बच्चा चित्र बनाने के लिए अपनी रुचि के अनुसार विषय चुनता है, अपनी मर्ज़ी के रंग भरता है, वहीं उसकी सृजनात्मकता को पंख लग जाते हैं। रंगों की पसंद भी हरेक की अलग–अलग होती है। यह छूट देने पर ही उनकी व्यक्तिगत पसंद और मौलिकता नज़र आती है।

आम तौर पर बच्चे नववर्ष, दीपावली या शिक्षक दिवस के अवसर पर शुभकामना कार्ड बनाकर शिक्षकों को दिया करते थे। कुछ बच्चे ऐसे कार्ड बनाकर कक्ष में लगे 'डिस्प्ले बोर्ड' पर टांग देते थे। इन कार्ड्स के माध्यम से भी उनकी सृजनात्मकता को अभिव्यक्ति मिलती।

शिक्षकों की सृजनात्मकता भी शिक्षण में बहुत महत्त्वपूर्ण एवं उपयोगी सिद्ध होती है। नए–नए शिक्षण उपकरण बनाना, अभ्यास के लिए नई–नई विधियां सोचना, नए–नए तरीक़े ईजाद करना शिक्षकों की सूझबूझ एवं सृजनात्मकता को दर्शाता है।

किसी सुन्दर दृश्य, चित्र या कलाकृति को देखकर प्रशंसा में निकले शब्दों का बहुत दूर तक असर होता है। इसलिए बच्चों को सुन्दर चीज़ों को देखकर सौन्दर्यानुभूति के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। विद्यालय में ऐसा माहौल दिया जाना चाहिए कि बच्चे अपने विचार और भावनाओं को स्वेच्छापूर्वक व्यक्त कर सकें।

राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रुपरेखा 2005 के अनुसार ''कला और विरासत शिल्पों को शिक्षा से जोड़ने के संसाधन हर स्कूल में उपलब्ध होने चाहिए। इसलिए यह महत्त्वपूर्ण है कि पाठ्यचर्या में कला गतिविधियों के लिए पर्याप्त समय हो। नाटक–नृत्य, मूर्तिकला सम्बन्धी कक्षाओं के लिए घंटे–डेढ़ घंटे का समय चाहिए। ज़ोर इस बात पर नहीं हो कि बच्चे वयस्कों के मानकों के हिसाब से कला सीखें या पूर्ण कला का विकास हो, बल्कि कला–शिक्षा के माध्यम से बच्चे को अपने आप विकसित होने का मौक़ा दिया जाए, उन पर अधिक दबाव न डाला जाए। कुछ सालों में शिक्षक की सहायता से विद्यार्थी अपने समर्पण व मेहनत से स्वतंत्र कला परियोजनाएँ प्रस्तुत कर पाएंगे जिसके साथ उनमें सौंदर्यबोध, गुणवत्ता व श्रेष्ठता भी पनप सकेगी।''

यह सच है कि सभी बच्चों में सृजनात्मक क्षमता होती है यद्यपि उसकी श्रेणी में अन्तर हो सकता है। सृजनात्मकता शून्य में नहीं पनपती। यह सच्ची शिक्षा का कार्य है कि बच्चों की सृजनात्मक क्षमताओं के अधिकतम विकास के लिए उपयुक्त माहौल उपलब्ध करवाएं। बच्चों को जितना ज्ञान और अनुभव दिया जाएगा अपने सृजनात्मक प्रयासों के लिए उन्हें उतनी ही सुदृढ़ नींव मिलेगी। एक प्रेरक और उद्दीपक वातावरण बच्चे की सृजनात्मकता को बढ़ावा देता है। घर या विद्यालय का कठोर अनुशासनपूर्ण वातावरण जो एकरूपता पर विशेष बल देता है, बच्चों की सृजनात्मकता को बाधा पहुंचा सकता है।

शिक्षाशास्त्री गिजुभाई के अनुसार ''सच्चा सृजन शान्ति, प्रसन्नता, एकाग्रता, निर्भयता, स्वतन्त्रता एवं स्वयंस्फूर्ति द्वारा प्रकट होता है।'' विद्यालय में बच्चों को वस्तुओं को देखने तथा उन पर प्रयोग करने, जिज्ञासु होने तथा प्रश्न करने के लिए प्रेरित किया जाना चाहिए।

पूर्व बुनियादी शिक्षा की पद्धति स्पष्ट करते हुए गांधीजी ने कहा था ''मेरी सिखाने की पद्धति यह होगी कि जब बच्चा बोलना शुरू करता है तब भाषा की तालीम (मौखिक) शुरू होगी। पहले रंगों की पहचान करायें फिर चित्रों से शुरू करें। अक्षर भी तो चित्र ही होते हैं। कोई तोते का चित्र बनायेगा, कोई चिड़िया का, तो कोई किसी अक्षर का। इस प्रकार सबके अलग–अलग चित्र होंगे।''

''बच्चों का हिलना, चलना, खेलकूद सभी सृजनात्मक होते हैं। खेल का मतलब होता है कुछ करते हुए सीखना। यदि शुरू से बच्चे को रचनात्मक काम करने की आदत पड़ जाये तो उसकी प्रगति उसी दिशा में होगी। वह आलसी नहीं होगा और आगे चलकर उसे कोई काम बोझ नहीं मालूम होगा। काम के साथ वह उस काम में दिमाग भी लगायेगा, जिससे उसकी सृजनात्मक प्रवृत्ति अधिक बढ़ती जाएगी।''

बुनियादी शिक्षाक्रम में खेलकूद, नृत्य, संगीत नाट्य प्रयोग, सामाजिक, सांस्कृतिक और धार्मिक उत्सवों को मनाना, साहित्य–रचना आदि विविध और विचित्र प्रवृत्तियां शामिल हैं और बच्चों की कलात्मक प्रवृत्तियों का विकास करने की अपेक्षा की जाती है।

---

**वि.वि. सिंह,** पूर्व प्रधानाध्यापिका, विद्या भवन सोसायटी जूनियर स्कूल। वर्तमान में विद्या भवन सोसायटी में कार्यरत।

# श्रम जगत् की यात्राएं

**वसीली सुख़ोम्लीन्स्की**

''श्रम को बच्चों के आत्मिक जीवन की एक सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता बनाने के लिए हमें क्या करना चाहिए?'' हम सब अध्यापक इस प्रश्न पर बहुत सोच–विचार रहे थे। प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षक पढ़ाई के पहले दिनों से ही बच्चों को उनकी क्षमता के अनुसार स्कूल के बाग़ और प्रयोगात्मक खेत में काम में लगाते थे। हमने एक छोटा–सा तापघर बनाया, जहां बच्चे जाड़ों में बाग़वानी करते थे। बच्चों के रम को उच्च आदर्शों से कैसे प्रेरित किया जाए? इस प्रश्न पर आपस में सलाह–मशविरा करते हुए शिक्षकों ने फ़ैसला किया : हर साल नौ मई को, फ़ासिस्ट जर्मनी पर विजय के दिन, हम एक बलूत वृक्ष लगाएंगे। यह हमारी ख़ुशियों का जीता–जागता इतिहास होगा। उस समय से हर साल हमारे विजय उपवन में एक नया बलूत वृक्ष लगाया जाता है। बच्चों के चरित्र निर्माण के लिए यह अत्यंत महत्त्वपूर्ण है कि अपने चारों ओर वे केवल प्राकृतिक सौंदर्य को ही नहीं, बल्कि श्रम, सृजन और निर्माण के संसार को भी देखें। हम सब शिक्षक इसे अपना एक सबसे बड़ा कार्यभार समझते थे। श्रम में ही मानव सौंदर्य सबसे अच्छी तरह निखरता है।

हमारे ''ख़ुशियों के स्कूल'' में अब श्रम जगत् की यात्राएं होने लगीं। बच्चों को अपनी पहली ''यात्रा'' कभी नहीं भूलेगी। उस दिन से सामूहिक फ़ार्म का अन्न भंडार देखने गए। बच्चों ने अनाज के ढेर देखे– वहां टनों अनाज थे। वान्यसा के पिता ने उन लोगों के बारे बताया, जो अनाज की अच्छी फ़सल उगाते हैं। कम्बाइनचालक ग्रिगोरी आन्द्रयेविच बच्चों को खेत में ले गए– वह गांव के पास ही, अन्नभंडार के पीछे। ''इस सौ हैक्टर ज़मीन से मैंने इस साल चार सौ टन अनाज लिया है। और दस साल में मैंने अपने कम्बाइन से इतना अनाज काटा है, जितना एक नगर के लिए चाहिए,'' उन्होंने बताया।

इस तरह बच्चे केवल अपनी बुद्धि से, मस्तिष्क से ही नहीं, बल्कि हृदय से भी संसार का बोध पाते हैं। श्रमिक मानव का सौंदर्य बच्चों को विस्मय–विमुग्ध करता है। उनके मन में मनुष्य के प्रति गर्व की भावना जगती है। और जब श्रम जगत् की ''यात्राओं'' के दौरान बच्चे अपनी माताओं और पिताओं से मिलते हैं, तो यह भावना हृदय में और भी गहरा स्थान बना लेती है। डेरी में बच्चों का पता चला कि तान्या की मां जिन गायों की देखभाल करती और उन्हें दोहती हैं, वे डेढ़ हज़ार लोगों के लिए दूध देती है।

शरद के एक सुहाने दिन हम मशीन निर्माण कारख़ाना देखने गए। वहां वात्या के पिता ने हमारा स्वागत किया। यह बच्चों को ढलाईख़ाने में ले गए, जहां लोहा गलाया जा रहा था। बच्चों ने जितनी भी कथा–कहानियां सुनी या ख़ुद गढ़ी थीं, उनमें यह शायद सबसे दिलचस्प थी : मनुष्य ठोस पदार्थ को लाल अग्निल नदी में बदल रहा था और यह नदी मनुष्य के संकल्प और उसके श्रम से धातु की सिलों में बदलती जा रही थी। मुझे यह देखकर बड़ी ख़ुशी हुई कि कैसे बच्चों के सृजनात्मक कार्यों में एक

नया अंतर आ गया है : बच्चे ऐसे वीर पुरुषों की कहानियां बनाने लगे, जो लोहित, अग्निल नदियां बनाते हैं, ड्राइंग की कापियों में वे धातुकर्मियों के चित्र बनाने लगे। ढलाईख़ाने की पहली यात्रा ने बच्चों के मानस–पटल पर अमिट छाप छोड़ी थी। बच्चे पहले से ही जो देखते आए थे, उसे अब मानो उन्होंने नई नज़रों से देखा था : धातु के बिना मनुष्य एक दिन भी काम नहीं कर सकता, जी नहीं सकता। मज़दूर, धातुकर्मी और मशीन निर्माता सच्चे अर्थों में जीवन के सृजनकर्त्ता हैं। मेरे छात्रों के मन में उनके प्रति गहरे आदर की भावना पैठ गई।

मशीन–ट्रैक्टर स्टेशन की हमारी यात्राएं भी रोचक थीं। यहां बच्चों ने ख़रादियों, फ़िटरों का कौशल देखा। बच्चों ने देखा कि कैसे लोहे के टुकड़े से ट्रैक्टर या कम्बाइन के लिए कल–पुर्ज़ा बनता है। लरीसा के पिता ने बच्चों को पेच बनाकर दिखाया, जिसके बिना कोई मशीन नहीं चल सकती। बच्चे सांस रोके उनके फुर्तीले हाथों का हुनर देखते रहे।

लोकहित के लिए किए जानेवाले श्रम में ही सर्वप्रथम इंसान का इंसान से प्रति रुख़, उनका सामाजिक जीवन प्रकट होता है। मनुष्य की मानवीयता इसी बात में व्यक्त होती है कि वह दूसरों की भलाई के लिए कैसे श्रम करता है। बच्चों के शिक्षण और चरित्र–निर्माण में मैं सबसे पहले इसी ओर ध्यान दे रहा था कि बच्चे अपने परिवेश में हमारे समाजवादी यथार्थ के इस पहलू को भली–भांति देख और समझ पाएं। मैं यह कोशिश करता था कि बच्चों के हर्ष और प्ररेणा का स्रोत केवल प्रकृति का सौंदर्य ही नहीं हो, बल्कि वह गुण भी, जो हमारे देश के नव मानव को चरित्रित करता है। यह गुण है– मातृभूमि और समाज के प्रति, लोगों के प्रति सेवाभाव। श्रमिक जन के प्रति बच्चों के मन में जो प्यार जागता है वही मानवीय नैतिकता का स्रोत है।

---

**साभार** – वसीली सुख़ोम्लीन्स्की, बाल–हृदय की गहराइया

रपट-1

# लैब एरिया की स्कूलों में अर्थपूर्ण शिक्षा

दिनांक 6 सितम्बर 2008 को ज़िला शिक्षा एवं प्रशिक्षण संस्थान, नाथद्वारा के तत्त्वावधान में बुनियादी शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में डाइट के लैब–एरिया विद्यालयों के संस्थाप्रधान, डाइट संकाय सदस्य एवं विद्या भवन बुनियादी शिक्षा संस्थान के सम्मिलित प्रयास से एक कार्यशाला का आयोजन किया गया। इस कार्यशाला में डाइट के लैब एरिया विद्यालयों को शैक्षिक रूप से सुदृढ़ करने, एवं शैक्षिक गुणवत्ता में अभिवृद्धि करने के उद्देश्य से विद्यालयों में संपादित संभावित क्रियाकलापों पर विचार–विमर्श किया गया। साथ ही बुनियादी शिक्षा को प्रारंभिक शिक्षा में लागू कर बालकों को बेहतर शिक्षा कैसे उपलब्ध करवाई जा सकती है? इस पर भी मंथन किया गया। विचार–विमर्श के पश्चात् निम्नलिखित बिन्दुओं पर आम सहमति बन पायी कि प्रारंभिक शिक्षा के सुदृढ़ीकरण हेतु निम्नलिखित क्षेत्रों पर विशेष कार्य किये जाने की आवश्यकता है–

मातृभाषा शिक्षण में प्रारंभिक स्तर तक बालक हिन्दी शब्दों का उच्चारण अच्छी तरह कर सके, वह शुद्ध बोल सके, पढ़ सके एवं शुद्ध ही लिख सके। वह लिखित जानकारी को पढ़कर अच्छी तरह समझ सके एवं उसका दैनिक जीवन में यथासंभव सदुपयोग कर सके। इसके लिए बालक का शब्दज्ञान कोष बढ़ाना होगा। इसके लिए जो ''शब्द'' बालक कक्षा शिक्षण के दौरान पढ़ता है, उसका अर्थ एवं भाव समझकर वह इस लायक हो जाए कि इन शब्दों का उपयोग कहां–कहां पर, कैसे तथा कब किया जा सकता है? हिन्दी की पाठ्यपुस्तक आधारित 50–50 शब्दों का कक्षावार चयन कर उनकी समझ विकसित करने की योजना पर कार्य करने हेतु निर्णय लिया गया।

इसी प्रकार अंग्रेजी भाषा शिक्षण अन्तर्गत शब्दों के सही उच्चारण उनके Phonetics के अनुसार करवाने पर बल दिया जाए। अंग्रेजी शिक्षण में भी उक्तानुसार शब्दों का चयन कर कार्य योजना बनाई गई।

यह भी चर्चा की गई कि क्यों न हम स्कूलों में कक्षा पुस्तकालय प्रारंभ करें। विद्या भवन में चलाए जा रहे कक्षा पुस्तकालयों के अनुभवों से यह प्रेरित होकर हम शीघ्र ही लैब एरिया की चुनी गई प्राथमिक स्कूलों में भी कक्षा पुस्तकालय प्रारंभ करने की योजना बना रहे हैं।

बालकों में हिन्दी एवं अंग्रेजी शब्दकोश पढ़ने की समझ कैसे विकसित की जाए? आजकल स्वाध्याय की प्रवृत्ति कम होने से शब्दकोश का उपयोग भी प्रायः बहुत कम किया जा रहा है, परिणामस्वरूप चिंतन–मनन एवं गहराई से किसी ज्ञान की समझ में निरन्तर गिरावट अनुभव की जा रही है। अतः बालकों को हिन्दी व अंग्रेजी शब्दकोश (डिक्शनरी) को सरलतम रूप में उपयोग करने के लिए कुछ टिप्स देने हेतु चर्चा की गयी।

प्रायः भूगोल विषय में मानचित्र पठन एवं उसको समझकर पुनः मानचित्र अंकन करने में बालक ग़लती कर बैठता है। यदि बालक को विश्व के मानचित्र की सही भौगोलिक जानकारी हो, तो वह किसी भी क्षेत्र की जलवायु, मौसम, वहां की खनिज

सम्पदा, उद्योग धंधे, व्यापार आदि के बारे में अच्छी तरह से समझ बना सकता है। अतः बालकों को मानचित्र संबंधी प्रारंभिक जानकारी देकर उसकी समझ विकसित कर निरन्तर अभ्यास करवाए जाने पर भी विचार–विमर्श कर योजना तैयार की गई। नक्शों पर तैयार वर्कशीट उपलब्ध कराई जाएगी। इन वर्कशीट के ज़रिए बच्चों में नक्शा बनाना, पढ़ना आदि कौशलों का विकास हो सकेगा।

प्रारंभिक स्तर पर विज्ञान शिक्षण प्रायः किताबी ज्ञान देकर ही कराया जाता है जबकि बालकों को प्रकृति की गोद में, बाह्य वातावरण में ले जाकर आनन्द के माहौल में प्रकृति से परिचय करवाया जाना चाहिए। बालक में अपने परिवेश की किसी वस्तु को बारीक़ी से देखने और समझने की क्षमता विकसित करने की आवश्यकता है। प्रकृति में उसके आस–पास होनेवाले बदलाव को वह स्वयं देखकर महसूस करे और अच्छी तरह समझ सके। वह स्वयं छोटे–छोटे प्रयोगों को जांचकर, समझकर, निष्कर्ष निकाल सके। इस हेतु पाठ्यक्रम आधारित कुछ चुनिंदा प्रयोगों की सूची बनाकर विद्यालयों में बालकों द्वारा कैसे करवाया जा सकता है? इस पर भी कार्य योजना बनाई गई।

कार्यशाला में विद्या भवन शिक्षा केन्द्र के प्रतिनिधि द्वारा अपने विचार व्यक्त किए गए कि लैब एरिया विद्यालयों में पुस्तकालय व्यवस्था को प्रभावी बनाया जाए। बालकों को प्रति सप्ताह बालोपयोगी साहित्य पढ़ने हेतु वितरण किया जाए। इससे बालकों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति में वृद्धि होगी, बालक में किताबी ज्ञान को पढ़कर समझ सकने की क्षमता विकसित हो सकेगी। रचनात्मक लेखन के माध्यम से सृजनात्मक चिंतन का विकास होगा। यदि विद्यालयों में इस प्रकार का बालोपयोगी साहित्य उपलब्ध नहीं है, तो विद्या भवन बाल साहित्य के चुनाव करने की प्रक्रिया में मदद कर सकता है। इसी प्रकार भूगोल आदि शिक्षण हेतु वर्कशीट उपलब्ध करवाने हेतु भी आश्वस्त किया गया। उन्होंने बताया कि विद्या भवन बुनियादी शिक्षा संस्थान इस ओर प्रयासरत है कि प्रत्येक बालक को बेहतर शिक्षा मिले, जो उसकी अपनी भाषा में ही दी जाए। वह स्वयं अपने हाथ से कुछ काम करके, अनुभव करके, अपने आस–पास के परिवेश में हो रहे परिवर्तन को स्वयं देखकर, जांचकर, अनुभव करके सीखे, जिसका आवश्यकता पड़ने पर वह दैनिक जीवन में उपयोग भी कर सके। यही बुनियादी शिक्षा की शुरूआत है।

---

**द्वारिका प्रसाद नागदा,** वरिष्ठ व्याख्याता, डाइट नाथद्वारा, ज़िला– राजसमन्द

## बुनियादी शिक्षा की सहयोग राशि

बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश की सहयोग राशि अब तक 50/– वार्षिक रखी गई थी। दरअसल यह राशि सांकेतिक ही है। इस सहयोग राशि में हमें इज़ाफा करना पड़ रहा है।

अब अगले अंक से बुनियादी शिक्षा के एक अंक की सहयोग राशि 20/– तथा वार्षिक शुल्क 120/– होगी।

पुस्तक समीक्षा

# स्कूल की दीवार के बहाने

कुमार अनुपम

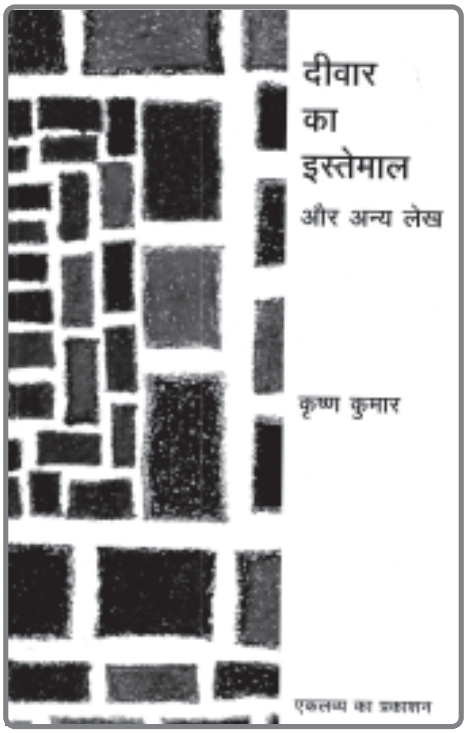


| | | |
|---|---|---|
| पुस्तक | : | दीवार का इस्तेमाल |
| प्रकाशक | : | एकलव्य, भोपाल |
| मूल्य | : | 60 रुपए |

इस पुस्तक को पिटारा विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर से भी प्राप्त किया जा सकता है।

'दीवार का इस्तेमाल' पुस्तक में उन पहलुओं पर सूक्ष्म दृष्टिपात किया गया है जो शिक्षा के व्यापक और निराश करनेवाले मुद्दे हैं। ये छोटे–छोटे लेख के रूप में हैं। यह शैली लेखक को विशेष प्रिय है क्योंकि टिप्पणी लिखने की ज़रूरत के बहाने स्कूलों और शिक्षा से जुड़े अन्य संस्थानों को वहां जाकर देखने और लौटकर उनके बारे में कुछ कहने का उत्साह बना रहता है।

शिक्षा की समस्याएं सिर्फ़ शिक्षा की नहीं हैं, वे समाज और राज्य की संरचना और समस्याओं से भी जुड़ी हैं। स्कूलों और इम्तिहानों का जाल हमें उदास और परेशान करता है तो फिर हम क्यों नहीं इस पर बारीक़ी और छोटे संदर्भों में विचार करें। लेखक का कहना है कि इन सभी समस्याओं से जिसका रोज़ पाला पड़ता है वह इतना कम लिखता है और बोलता है कि स्कूल का संसार और इसके इर्द–गिर्द फैला समाज और सरकार का संसार कभी ठीक से खुल ही नहीं पाता। लेखक का शिक्षकों से आग्रह है कि वे भले ही लिखे नहीं लेकिन कम से कम पढ़ें तो अवश्य।

इसमें शिक्षा जगत् से जुड़े पहलुओं पर 27 लेखों में गंभीरता से विचार किया गया है। मसलन पहले लेख 'दीवार का इस्तेमाल' में उन्होंने बताया है कि स्कूल दीवार का इस्तेमाल किस रूप में करते हैं।

दीवार का उपयोग सामान्यतः बाहरी दुनिया से रक्षा के लिए किया जाता है जिसमें धूप, वर्षा, ठंड, पशु और अवांछित मनुष्य हो सकते हैं। दूसरी बात यह है कि स्कूल एक ख़ास किस्म का वातावरण निर्माण करना चाहते हैं। दीवार के सहारे बाहर की दुनिया के सामाजिक यथार्थ से बच्चों को अलग रखना चाहते हैं क्योंकि बच्चों का व्यक्तित्व यथार्थ की आंच नहीं सक सकता।

आम तौर पर हम स्कूलों की दीवारों पर सूक्तियों की भरमार पाते हैं। समय ही अनुशासन है ''सदा सच बोलो, ''क्रोध को जीतो'', ये सारे विचार तो अच्छे हैं लेकिन स्वयं शिक्षक अपने आचार में इन्हें नहीं उतारते। ऐसे नीति संबंधी वाक्य स्कूल की वास्तविकता को प्रकट नहीं करते। इस तरह बच्चे सोचते होंगे कि भाषा का इस्तेमाल बग़ैर किसी अर्थ के होता है।

लेखक का कहना है कि भारतीय और पश्चिमी स्कूल दोनों का एक काम तो अवश्य है समाज से अलगाव को भिन्न तरीक़े से छिपाना। भारतीय स्कूल दीवारों पर लिखे उपदेशों के माध्यम से बच्चों में झूठी नैतिकता सिखाने में माहिर हैं तो पश्चिमी स्कूल बच्चों की कृतियां दीवार पर टांगकर उनके समाजीकरण की तरफ़ से अपनी आंखें मूंद लेते हैं। लेखक का कहना है कि दीवारों पर क्या हो रहा है। यह ज़्यादा महत्त्वपूर्ण नहीं है। बनिस्बत दीवारों के भीतर क्या हो रहा है? यह अधिक महत्त्वपूर्ण है।

'कक्षा में भीड़' लेख में लेखक ने कक्षा में उपलब्ध जगह, बैठने के सीमित साधन और साधन सेवी के असमान वितरण पर चर्चा की है।

यदि किसी विद्यालय के किसी कक्षा में बैठने के साधन कम हैं और संख्या अधिक है तो ऐसा सही नहीं है कि उन साधनों का कम ही बच्चे इस्तेमाल करें बाक़ी उससे वंचित रहें। होना यह चाहिए कि उस कक्षा में बैठने के साधन हटा देने चाहिए ताकि सबके लिए बैठने की समान व्यवस्था हो सके। कक्षा में जगह कम होने की स्थिति में शिक्षक एक कोने में बैठा रहता है, जिससे उसकी पहुंच सभी बच्चों तक एक समान नहीं होती है। ऐसी स्थिति में लेखक का सुझाव है कि वह बच्चों को वृत्त में बैठाए और स्वयं बीच में बैठे ताकि उसकी उपलब्धता सारे बच्चों तक समान हो। इस पर लेखक कहता है स्कूल में जितनी भी जगह है और जितनी भी अध्यापिकाएं हैं उनका जनतांत्रिक रीति से उपयोग होना चाहिए। बैठने की इस व्यवस्था से शिक्षक और बच्चों के बीच की दूरी कम होगी। साथ ही साथ भाषण की जगह संवाद पर आधारित तकनीक शिक्षक ढूंढ़ ले तो और सार्थकता आएगी।

लेखक का कहना है कि सभी हलकों में लोग परिवर्तन की बाट जोह रहे हैं और ऐसा करते समय वे कोई ख़ास काम नहीं कर रहे हैं। आगे कहते हैं कि अध्यापिका की परिस्थिति तो ख़राब है ही, उनके स्कूल की लड़कियों की परिस्थिति और भी ख़राब है। कक्षा और स्कूल का एक–एक अनुभव उनके सामाजिक और राजनीतिक संस्कार रच रहा है। जैसे कुछ शिक्षक के नज़दीक बैठी हैं और कुछ टाट–पट्टी पर कमर झुकाए भीड़ का एक हिस्सा बनी बैठी हैं। ऐसी प्रत्येक स्थिति उनके संस्कारों का हिस्सा बन रही है और उनकी आत्मछवि को ढाल रही है।

अंत में एक प्रश्न लेखक ने खड़ा किया है कि यदि हम बच्चों की बहुत अधिक संख्यावाले सरकारी स्कूल में पढ़ाते हैं तो अपनी कक्षा के बच्चों को भीड़ बनने से कैसे रोकें? बहुत अधिक संख्या में बच्चों को अपने सामने पाकर हम स्वयं नेता बनने से कैसे बचें? जब अध्यापक नेतृत्व करने लगता है तो बच्चे भीड़ बन जाते है।

स्कूलों में आयोजित होनेवाले सांस्कृतिक कार्यक्रम के बारे में लेखक का कहना है कि यह शाबाशी पाने

के लिए की जाती है। भले ही शाबाशी देने वाला कितना ही भ्रष्ट और मक्कार क्यों न हो। इसी तरह बच्चे भी इनाम, पदक, प्रमाण पत्र और तारीफ़ की लालच में इन कार्यक्रमों में भाग लेते हैं। इस तरह सांस्कृतिक कार्यक्रम के द्वारा भाषा शिक्षण का लक्ष्य गौण हो जाता है।

हमारे स्कूल प्रशंसा और प्रतियोगिता के दो ध्रुवों के बीच फंसे हैं। अतः इसके अतिरिक्त कोई बाहरी चीज़ उन्हें भाती नहीं है। शिक्षकों में रंगचेतना का विकास उन्हें प्रशिक्षित करनेवाली संस्थाएं भी कर सकती हैं। अध्यापक भी स्वयं कर सकता है। वे यह काम परीक्षा और पाठ्यपुस्तकों के आधिपत्य को नकारे बिना नहीं कर सकते।

बच्चों में किताब पढ़ने की आदत कैसे विकसित की जाए? बच्चे पूरी किताब पढ़ने से डरते हैं। लेखक भी पूरी किताब पढ़ने से डरता है। उसका कहना है कि ''क्या यह डर मुझे पाठ्यपुस्तकों पर टिकी शिक्षा ने दिया है।''

बच्चों के लिए बाल साहित्य की व्यवस्था तो कक्षा में पुस्तकें रखकर की जा सकती है जिनकी देख–रेख की ज़िम्मेदारी शिक्षक को उठानी होगी। लेकिन किताबों का चयन कैसे करें? हिन्दी बाल साहित्य की स्थिति यह है कि इसमें कल्पनाशील साहित्य की कमी और पाठ्यपुस्तकीय साहित्य की वृद्धि होती जा रही है। यदि बाल साहित्य उन्हें बाहर की दुनिया का अनुभव देता है तो उन्हें पढ़ने में आनंद आएगा। उनकी संप्रेषण क्षमताएं भी बढ़ेगी।

''कहानी कहां खो गई?'' में लेखक का कहना है कि कहानी कहने की उपयोगिता कहानी की सीख नहीं, कहने के धीरज और ढंग में है। इस बात पर ज़ोर दिया जाना चाहिए कि कहानी सुनने लायक हो।

लेखक को यह पसंद नहीं है कि कहानियां सुनानेवाले स्वयं बच्चे बनकर कहानियां सुनायें। बड़े और छोटे का फ़ासला कहानी स्वयं तय करती है। इस फ़ासले को किसी कृत्रिम मुद्रा, मुस्कान या संबोधन से ढंकने की ज़रूरत नहीं।

लेकिन अन्यत्र प्रकाशित ''कहानी सुनाने का हुनर'' लेख में लेखक कहानी सुनानेवाले को निम्नांकित वाक्यों में सुझाव देता है– ''कहानी को लेकर बच्चों के साथ संवाद कई तरह के विकल्प पेश करता है। आप चाहें तो नाटकीय ढंग से दो आवाज़ों में बोलें इशारों या मुद्राओं से भी काम लें। संवाद को सजीव बनाने के लिए आप हाथ की कठपुतलियों का प्रयोग भी कर सकते हैं। आप कमरे के एक कोने से दूसरे कोने तक चलकर दोनों भूमिका ख़ुद निभा सकते हैं।''

परीक्षा प्रणाली के सामाजिक मूल्य गोपनीयता पैदा करते हैं। अपनी गोपनीयता बरकरार रखने के लिए परीक्षा प्रणाली बहुत सारे नाटक रचती है, यथा–नियत समय पर देशभर में परीक्षार्थियों के सामने सील किए हुए लिफ़ाफ़े को खोलना, पवित्र तीन घंटों के ख़त्म होते ही जल्दीबाजी में कॉपियां छीना जाना, ऐसे व्यक्तियों द्वारा इनकी जांच कराना जिन्होंने परीक्षार्थियों का चेहरा तक भी न देखा गया हो, अख़बारों के ज़रिए परीक्षाफल परीक्षार्थियों तक पहुंचना आदि।

कुछ शब्दों में उदारतापूर्वक चन्द्रबिन्दु का प्रयोग किया गया है– कँचे, अधिकाँश, अँधकारग्रस्त, अँधविश्वासी, आँध्रप्रदेश, मँगू, भिखमँगे, कुँजी। एक शब्द में प्रिंटिंग दोष है– ह्रास। 'ज' को छोड़कर अन्य चार अक्षरों यथा क,ख,ग,फ में नुक़ता का प्रयोग नहीं किया गया है। 'ज' में नुक़ता लगाने में कंजूसी बरती गयी है।

---

**कुमार अनुपम,** विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केन्द्र, उदयपुर में कार्यरत।

रपट–2

# शिक्षक की डायरी

**अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन द्वारा उत्तराखंड में चलाए जा रहे लर्निंग गारंटी प्रोग्राम के तहत उत्तरकाशी ज़िले के एक शिक्षक से हमारी मुलाकात हुई। चर्चाओं में यह बात निकलकर आई कि वे डायरी लिखते हैं। वैसे डायरी तो अपनी स्कूल में हर शिक्षक को लिखनी होती है मगर उसमें कक्षा का ज़िक्र नदारद होता है। उत्तराखंड के एक सरकारी स्कूल में पदस्थ हेमराज भट्ट ने स्कूल की कक्षा से लगाकर सरकारी दफ़्तरों और रोज़मर्रा की ज़िंदगी को भी डायरी में स्थान देने का साहस किया है। प्रस्तुत है हेमराज भट्ट की डायरी के कुछ पन्ने–**

आज दिनांक 01 अगस्त 2007 को प्रातः 7:00 बजे उत्तकाशी से चलकर 9 बजे पहुंचा। कल शाम पांच बजे लर्निंग गारंटी कार्यक्रम में व्यस्त रहा।

विद्यालय में श्रीमती बिमला और श्रीमती दर्शनी दोनों शिक्षा आचार्या आ चुकी थीं। और कार्यालय में बैठी दोनों आपस में बतिया रही थीं। मेरे आते ही वे सजग होकर बैठ गईं और कक्षा में जाने लगीं।

बच्चे कक्षाओं में व्यवस्थित बैठे थे और माता भोजन पका रही थी। हम तीनों ने बैठकर यह निश्चय किया कि आज कौन किस कक्षा में क्या विषय पढ़ाएगा। बच्चों को तीन स्थानों पर बिठाने का निश्चय किया। कक्षा 1 व 2 को एक कक्ष में, कक्षा 4 व 5 को दूसरे कक्ष में और कक्षा 3 को बरामदे में बिठाकर पढ़ाने चल दिए। श्रीमती बिमला और श्रीमती दर्शनी इसी गांव की दो बस्तियों में ईजीएस. के अंतर्गत संचालित विद्या केन्द्रों में शिक्षिकाएं हैं और जब मुझे विभागीय कार्यों से विद्यालय से बाहर जाना पड़ता है तो इन दोनों में से किसी एक अथवा दोनों की व्यवस्था शिक्षा समिति प्राथमिक विद्यालय में करती है। इस दौरान वे अपने छात्र-छात्राओं को भी प्राथमिक विद्यालय में ही लाती हैं।

भोजनावकाश के बाद दोनों शिक्षिकाएं कक्षा में चली गईं। मैंने कक्षा 4 व 5 को लेकर एक कक्ष साफ़ करवाया जिसमें बजरी और स्कूल का बेकार समान और अन्य

चीज़ें रखी हुई हैं।

आज मैंने भोजनावकाश से पूर्व बाद कक्षा तीसरी में पर्यावरण अध्ययन पढ़ाए गए पहले पाठ का भी पुनरवलोकन करवाया। जब मैंने बच्चों से पूछा के मैंने अब तक तुम्हें क्या-क्या बताया है तो केवल दो बच्चों ने अपेक्षित उत्तर दिए- सजीव और निर्जीव वस्तुएं, भगवान और आदमी की बनाई हुई चीज़ें। बाक़ी बच्चों के उत्तर थे- कुर्सी, पत्तियां, टहनियां, आदमी, भैंस आदि। इससे पूर्व इस कक्षा में मैं लगातार तीन दिन तक चंदन शीर्षक पाठ पढ़ा चुका हूं। इस पाठ में मानव निर्मित और प्राकृतिक वस्तुएं और सजीव-निर्जीव के बारे में मैंने काफ़ी चर्चा करवाई और इन अवधारणाओं को समझाने का प्रयास किया।

परन्तु मैं बीस में से सोलह बच्चों को प्राकृतिक शब्द का स्पष्ट और शुद्ध उच्चारण नहीं करवा सका। ऐसे में झुंझला उठता हूं। हालांकि यह भाषागत समस्या है और यह यक़ीन मुझे था कि मेरी बात को बच्चे समझ रहे थे और पूछने पर अपेक्षित उदाहरण दे रहे थे। परंतु सभी बच्चों को अपने परिवेश में हिन्दी के शब्द सुनने और बोलने के लिए न मिलने के कारण नितांत अपरिचित शब्दों का उच्चारण करने, उन्हें समझने और याद रखने में बच्चों को ख़ासी मशक़्क़त करनी पड़ती है।

आज ठीक एक बजे बच्चों की छुट्टी की और मेरा सारा वक़्त कमरों को व्यवस्थित करवाने में ही बीत गया।

घर आकर भोजन किया और तीन बजे अपराह्न तक विश्राम किया। तीन बजे से चार बजे तक कक्षा दो के बच्चों के लिए एक कहानी टाइप की और प्रिन्ट निकालकर उसे लेमिनेट किया। इस कहानी- ''दो बकरियां'' से कक्षा दो के बच्चों में से उन बच्चों को पढ़वाने का अभ्यास कराऊंगा जिन्हें वर्णमाला भी ठीक से पहचाननी नहीं आ रही है। चार बजे विद्या मंदिर के आचार्य जी आए, एक घण्टा उन्हें कंप्यूटर सिखवाया और फिर उनके साथ बाज़ार टहलने निकल गया।

साढ़े आठ बजे से डायरी लिखी। दस बजे डायरी पूरी की। कादंबिनी का अगस्त अंक पढ़ा और साढ़े दस बजे सो गया।

---

आज दिनांक 6 अगस्त 2007 सोमवार को ठीक 7:15 पर विद्यालय पहुंचा। बच्चे आठ बजे तक विद्यालय में आए। आठ बजे प्रार्थना आरंभ हुई। बच्चों को पंक्ति में खड़ा कर बिमला को आवश्यक विचार विमर्श देकर 8:05 पर प्रधानजी को मिलने उनके घर जा रहा था

तो भोजन माता सड़क पर स्कूल आती हुई मिली। उसने अभिवादन किया। उसे 'जाओ जल्दी से खाना पकाओ' कहकर मैं प्रधानजी को मिलने उनके घर चला गया।

प्रधानजी ने स्कूल में हो रहे निर्माण कार्य के बारे में विचार-विमर्श करने के बाद मैं ठीक 9:15 पर स्कूल में लौट आया। स्कूल में आकर देखा तो भोजन माता अभी तक चूल्हे में आग जला रही थी। दस बजे तक खाना बन जाना चाहिए ताकि मध्यान्तर में बच्चे खाना खा लें और ग्यारह बजे से फिर पढ़ाई आरंभ हो जाए। भोजन माता सवा नौ तक आग ही जला रही थी जबकि वह सवा आठ बजे स्कूल में पहुंच गई थी। उसकी इस लेट लतीफ़ी पर गुस्सा आया और मैंने उसे समय पर आने और समय पर भोजन तैयार करने के लिए कहा तो वह रोज़ की तरह मुंह चलाने लगी और बजाय अपनी ग़लती स्वीकार कर देर से आने की आदत में सुधार करने के बकबक करती रही। उसके उल्टे जवाबों से मैं गुस्सा हो गया और मैंने उसे डांटकर कहा कि अगर उसने 10:00 बजे तक खाना नहीं पकाया तो पके हुए चावल या दाल को वह अपने घर ले जाय।

उसने ग्यारह बजे तक केवल भात पकाया और मध्यान्तर में दाल मांगने लगी तो मैंने नहीं दी और पका हुआ भात अभिभावकों को दिखाने को रख दिया।

दरअसल मैं उसकी ढीठ आदतों से तंग आ गया हूं। सारे बच्चे और अभिभावक उससे परेशान हैं। कोई दूसरी भोजन माता यहां भोजन बनाने को तैयार नहीं होती। कारण यह बहुत बुरी-बुरी गालियां देती हैं। इस चयनित माता के कोई बच्चे नहीं हैं। बच्चों के साथ भी वह भेदभाव करती है। रोज विलंब से आती है। ईंधन अनावश्यक बर्बाद करती है। समझाने पर भड़के और उल्टे जवाब देती है। खाना कभी समय पर नहीं बनाती। बच्चों को गालियां देती है। अगर वह उसका कहना नहीं मानते या पानी के लिए नहीं जाते तो क्लास में घुस जाती है और अनावश्यक बड़बड़ करती है।

छुट्टी के दिन बच्चों को दो-दो सेब बांटे। बच्चों को कहा कि कल अपने अभिभावकों को स्कूल बुलाकर लाना ताकि वे भोजना माता को समझाएं। छुट्टी के बाद जब मैंने उससे रसोई की चाबी मांगी तो उसने छुपा दी और मेरे साथ फिर गाली-गलौज करने लगी।

यह तीसरा या चौथा अवसर है जब मैं भोजना माता को समझाने के लिए अभिभावकों को बुला चुका हूं। ऐसी स्थिति में तनाव में गुजरना पड़ता है। कई बार विचार आया कि इसे हटाने की कार्यवाही करूं। पर फिर दया आती है। मैं नहीं चाहता कि मेरे हाथ से इसका बुरा हो। उसे समझाकर सही रास्ते पर लाना चाहता हूं और चाहता हूं कि वह अपनी आदतों

में सुधार करे। इससे पहले वह मेरी अनुपस्थिति में स्कूल से चावल-दाल और दूसरी सामग्री चोरी कर ले जा चुकी है जिसके लिए उसने प्रधान और शिक्षा समिति के सामने ऐसा फिर न करने का माफ़ी पत्र भी दिया है। पर वह फिर अपनी आदतों पर लौट आती है। जब भी भोजन माता के कारण गरमा गरमी का माहौल बनता है, मूड ख़राब होता है और शिक्षण व्यवस्था भी प्रभावित होती है।

आज का पूरा दिन उसी की बड़बड़ सुनते बीता। मध्यान्तर के बाद पढ़ाने में मन नहीं लगा। वह रोती-रोती घर चली गई।

अवकाश के बाद घर जा रहा था तो रास्ते में भोजन माता के देवर ने फिर विवाद करने की कोशिश की। उसे मैंने स्कूल में आने को कहा।

मध्यान्तर से पूर्व कक्षा चार और पांचवी में विलोम शब्द लिखवाए। विलोम की अवधारणा समझाई।

कक्षा 3 में संख्या पहचानने का अभ्यास कराया। 20 में से केवल 5 बच्चे 100 तक की संख्याओं को पहचान पा रहे हैं। शायद मेरा तरीक़ा ग़लत हो या बच्चे डरे हुए हों या उन्हें संकोच हो या उनकी कमी समझने की क्षमता मुझमें न हो। मैं बहुत प्रयास के बाद भी दो अंकों की संख्याओं की पहचान नहीं करवा पाया। कल उन्हें दो समूह में बांटकर अलग-अलग उनके साथ काम करूंगा।

मैं भी स्वयं पांरपरिक तरीक़ों से बाहर नहीं निकल पा रहा हूं। बहुत जल्दी धैर्य खो रहा हूं और कई बार उत्तेचित होकर बच्चों पर हाथ उठा दे रहा हूं। बाद में पश्चात्ताप भी होता है। फिर ऐसी हरकत न दोहराने का संकल्प भी लेता हूं। पर हार जाता हूं। 63 बच्चों के बीच एक साथ काम करना भी मानसिक थकान पैदा कर देता है। जो प्रेमपूर्वक संप्रेक्षण की क्षमता को कम कर देता है। हालांकि विमला और बिंदु भी मदद कर रही हैं पर वे तो मुझसे भी घोर पारंपरिक हैं।

इन दोनों से कक्षा एक और दो के बच्चों को अक्षर पहचान और सीधे पढ़ने की गतिविधियां कर रहा हूं। वे दोनों इस बात से सहमत ही नहीं हो पा रही हैं कि बिना अक्षर मात्रा, बारहखड़ी सीखे भी बच्चे पढ़ना सीख सकते हैं। वे मेरी बात पर हंसती है पर आख़िर वही गतिविधि करवाती हैं जो मैं कहता हूं। एक अगस्त से वे दोनों मुझे सहयोग कर रही हैं पर आज पांचवे दिन तक बच्चों में अपेक्षित प्रोग्रेस नहीं है।

इस साल मैं अपने विद्यालय को लर्निंग गारंटी स्कूल की श्रेणी में लाकर रहूंगा। मेरा यह

संकल्प मुझे बराबर ऊर्जा दे रहा है और लाख निराशा के बाद भी मैं हिम्मत से अगले दिन की गतिविधि सोचने लग जाता हूं।

कल सभी कक्षाओं के बच्चों को समूह में बांटकर उनके साथ काम करेंगे। परंतु मुझे लगता है कि कल के दिन का भी एक बड़ा हिस्सा भोजन माता की धूर्तता की भेंट चढ़ जाएगा।

आज 10 अगस्त को न्याय पंचायत कार्यालय में मासिक बैठक थी। मैं पहले 7:15 को विद्यालय में पहुंचा। विद्यालय में चार-पांच बच्चे पहुंचे थे। मैंने कार्यालय खोला, चाबी बच्चों को दी और बच्चों ने फुर्ती से कमरे साफ़ किए। मैंने बच्चों को पंक्ति में खड़े होने और प्रार्थना करने को कहा। बच्चों ने प्रार्थना की, मैं भी प्रार्थना स्थल पर बच्चों के साथ खड़ा रहा। प्रार्थना होते-होते 35 से अधिक बच्चे स्कूल पहुंच गए थे। आजकल सवेरे का स्कूल है और अधिकांश बच्चे दो से पांच किलोमीटर तक पैदल चलकर स्कूल आते हैं। अक्सर बच्चे आठ बजे तक पहुंच जाते हैं। मैं उनकी स्थानीय परिस्थितियों से परिचित हूं इसलिए देर से आने के लिए उन्हें डांटता नहीं हूं।

प्रार्थना के बाद बच्चों को कमरे में न बिठाकर मैंने उनकी छुट्टी कर दी क्योंकि मुझे मीटिंग में जाना था। सड़क पर रास्ते में भोजन माता मिल गई। आज बच्चों की छुट्टी कर दी है, यह भोजन माता को बताकर और भोजन न बनाने का कहकर मैं मीटिंग में चला गया। पौने नौ बजे के लगभग मैं एनपीआरसी. पहुंचा। वहां केवल एनपीआरसी. समन्वयक उपस्थित थे। आज मुझे टेलीफोन का बिल और एलआईसी. की किस्तें जमा कराने उत्तरकाशी जाना था इसलिए मैंने विद्यालय की सूचनाएं समन्वयक के पास जमा करवाई और उत्तरकाशी चला गया। वास्तव में आज के दिन का उपयोग अपने निजी काम पूरे करने के लिए करना चाहता था। मीटिंग में आना भी आवश्यक है और वहां कुछ सार्थक होता हो ऐसा तो बिल्कुल भी नहीं है। समन्वयक लोग पूरी तरह से डाकियों की भूमिका में आ गए हैं। इस बैठक में समन्वयक कुछ सूचनाएं देता है और कुछ लेता है बस। कुछ ऐसी बहस होती है जिनका कोई सिर-पैर नहीं होता। अपनी कुशलक्षेम होती है। स्थानांतरण और पे स्केल पर बात होती है और घंटा-दो घंटा बर्बाद करने के बाद लोग घर चले जाते हैं। स्कूल से छुट्टी पाने का यह निर्बोध दिवस होता है।

कभी-कभी तो ऐसा होता है कि समन्वयक किसी के पास संदेश भिजवा देता है कि मीटिंग 10 तारीख़ के बजाय 12 या 14 तारीख़ को होगी। पर लोग पहले दिन भी आते हैं और

दूसरे दिन भी। और कभी-कभी समन्वयक महोदय नहीं आते हैं तो फिर नहीं आते हैं। उनसे कोई नहीं पूछता कि उन्होंने क्यों अध्यापकों के दो-दो दिन बर्बाद किए। अधिकांश अध्यापक अपने सूचनाएं वहीं पर तैयार करते हैं। अगर किसी सूचना के आवश्यक आंकड़े कोई स्कूल से नहीं लाया तो उसे वहीं भिड़ा लिया जाता है। हमारे समन्वयक महोदय इस काम में ख़ासे माहिर हैं। वें कोर्ट, एमडीएम. और कोटिकरण तक की रिपोर्ट स्वयं बना लेते हैं। बस उन्हें संबंधित विषय के फॉर्मेट पर प्रधानाध्यापक के हस्ताक्षर और मुहर चाहिए होती है। अभी पिछले सत्र में कोटिकरण को लेकर उन्होंने मुझे कहा कि, आप अपने स्कूल के बच्चों की परीक्षा लेकर अंक सूची मुझे दे देना और अपने स्कूल को भी ग्रेड में दिखवा देना।

तो ऐसी मीटिंग का लाभ उठाकर मैंने आज जिला मुख्यालय के कार्य निबटाए। फोन का बिल जमा किया, जीवन बीमा की क़िस्तें जमा करवाईं, दो टीसियों पर काउंटर साइन करवाने थे पर आज अपर जिला शिक्षा अधिकारी माननीय शिक्षा मंत्री की अगवानी में गए थे। इस लिए टीसी. उन्हीं के कार्यालय में छोड़नी पड़ी।

उत्तरकाशी पहुंचते ही पहले अज़ीम प्रेमजी के सौरभ राय और फिर अनंत गंगोला का फोन आया। सौरभ ने 15 से 17 अगस्त तक देहरादून में आयोजित फीडबैक कार्यशाला में अनऑफिशियली प्रतिभाग करने का आमंत्रण दिया और अंनत गंगोला ने संक्षेप में कार्यशाला का उद्देश्य बताया। उन्होंने कुछ और शिक्षकों के नाम सुझाने को कहा तो मुझे केवल यमुना अवस्थी का नाम ध्यान आया। यमुना प्रसादजी को मैंने भी फोन किया और उन्हें कार्यशाला में प्रतिभाग करने का निमंत्रण दिया।

वापसी में युगवाणी पत्रिका खरीदी और उसमें ख़ास रस्किन बॉण्ड का संस्मरण, नई पाठ्यपुस्तकों पर सीता राम बहुगुणा का आलेख, आज़ादी की लड़ाई में पहाड़ी महिलाओं की भूमिका पर जीसी. जोशी का आलेख और पंकज बिष्ट की कहानी 'घर' पढ़ी। युगवाणी अच्छी सामग्री छाप रही है।

धौंतरी वापस आते ही एससीईआरटी. के पाठ्यपुस्तक लेखन कार्यशाला में प्रतिभाग करने के मानदेय स्वरूप ड्राफ़्ट मिला। रात 8:30 अपर निदेशकजी को इस प्रति आभार पत्र टाइप किया जिसे कल प्रिंट आउट करूंगा। 9:00 रात्रि से 10:30 रात्रि तक यह डायरी लिखी और साथ में गुलाम अली की ग़ज़लें भी सुनता रहा। अभी आधा पौन घंटा कादंबिनी का अगस्त अंक पढ़ूंगा और फिर सोऊंगा।

---

**हेमराज भट्ट**, सहायक अध्यापक, राजकीय प्राथमिक विद्यालय, भड़कोट, हुंडा, ज़िला– उत्तरकाशी, उत्तराखंड, 249165

# विद्या भवन और बुनियादी शिक्षा

के. आर. शर्मा

यह तो सर्वविदित है कि छात्रों का एक बड़ा तबक़ा शिक्षा के पहले चरण में ही शिक्षा से बाहर हो जाता है। जो छात्र आगे पढ़ाई कर पाते हैं वे भी जीवन में कुछ सार्थक नहीं कर पाते। उच्चतर माध्यमिक स्तर तक पढ़ाई पूर्ण होने के बाद सोचना शुरू होता है कि आगे क्या करें। आज की पाठ्यचर्या बच्चों को भावी जीवन की बौद्धिक, सामाजिक एवं आर्थिक आवश्यकताओं को पूरा करने के बारे में कोई दिशा नहीं देती। गांवों में पालक अक्सर यह कहते हुए मिलते हैं कि पढ़ाई के बाद बच्चा कहीं का नहीं रह जाता। जैसे कोई दस साल तक शिक्षा लेने के बाद भी अगर वह विचारों को व्यक्त न कर सके या विज्ञान स्नातक की डिग्री लिए छात्र बिजली का फ़्यूज भी नहीं लगा सके तो यह उसकी शिक्षा में अक्षमता है। विडंबना की बात यह है कि पढ़े–लिखे छात्र–छात्राएं सामाजिक सरोकारों के कामों को हेय दृष्टि से देखते हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो इन छात्रों के पास काग़ज़ के टुकड़े के रूप में सिर्फ़ एक प्रमाण पत्र रहता है जो कम ही किसी योग्यता या हुनर का प्रमाण दे पाता है। हमारी शिक्षा व्यवस्था के सामने सबसे बड़ी चुनौती यह है कि कैसे शिक्षा में ऐसी परिस्थितियां पैदा हों जो स्कूल और उसके बाद भी ज्ञान और काम के बीच पुल बनाने का काम करें।

भारतीय जीवनचर्या में काम का हमेशा ही बड़ा महत्त्व रहा है। गांधीजी ने बुनियादी शिक्षा के नाम से जो शैक्षिक दर्शन दिया था वह भी बौद्धिक संस्कृति और काम की संस्कृति की एकता की बात करती है। उत्पादक कार्य को विभिन्न शिक्षा योजनाओं में सबसे ज़्यादा प्रभावशाली शैक्षिक माध्यम माना गया है। समाज से जोड़नेवाले काम के अन्य रूप भी जैसे प्रयोग, सर्वेक्षण, ज़मीनी अध्ययन, स्वास्थ्य और साफ़–सफ़ाई और उद्यमशीलता आदि भी शिक्षा का ही अंग है।

जब हम अर्थपूर्ण शिक्षा की बात करते हैं तो हमारे सामने शिक्षा का एक दर्शन है और वह है बुनियादी शिक्षा। आज़ादी के बाद से और बहुत सारे लोगों के प्रयासों के बावजूद इसको उस स्वरूप में नहीं ला पाए हैं जिस स्वरूप में यह सभी स्कूलों के लिए संभव बन सके। अब तक बुनियादी शिक्षा को अपनाने को लेकर देशभर में किस प्रकार से कार्य किया गया? वे क्या कारण हैं कि बुनियादी शिक्षा सर्वसाधारण की शिक्षा नहीं बन पाई? इन सब सवालों पर विद्या भवन ने शिक्षा से जुड़े लोगों के बीच बहस को अंजाम दिया है। इन सवालों पर विमर्श की प्रक्रिया से बुनियादी शिक्षा की ख़ूबियों और सीमाओं को पहचानने का अवसर मिला है। साथ ही बुनियादी शिक्षा को आज के संदर्भ में पुनर्भाषीकरण करने में काफ़ी हद तक आगे बढ़ सके हैं।

बुनियादी शिक्षा को आज के संदर्भ में अपनाते हुए हमने इसके समस्त पहलुओं को गंभीरतापूर्वक समझने का प्रयास भी किया है। शिक्षा क्या है? इस मसले को बुनियादी शिक्षा के दायरे में परियोजना के प्रथम चरण से ही खंगालने का प्रयास किया है। जब हम बालकेंद्रित शिक्षा की बात करते हैं तो हमें यह देखना होगा कि बच्चों को एक स्तर पर मूर्त चीज़ों के साथ अंतःक्रिया करने के अवसर दिए जाएं। बच्चों को सीखने की आज़ादी दी जाए। साथ ही जब बच्चा स्कूल आता है तो वह कितना कुछ जानता है इसकी समझ हमारे पास होनी चाहिए। इन सब मसलों पर विद्या भवन में हम संवाद स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं। बुनियादी शिक्षा को अपनाते हुए बालकेंद्रित शिक्षा को इसी रोशनी में देखकर शिक्षा का तानाबाना बुनने का प्रयास किया है।

बुनियादी शिक्षा में कार्य को स्कूल में केंद्रीय स्थान क्यों

दिया गया इस बात को निर्माणवादी दृष्टिकोण से समझने का प्रयास किया है। निर्माणवादी दायरे में बच्चा ख़ुद ज्ञान का निर्माण करता है। इसका अर्थ यह होता है कि ज्ञान के निर्माण के लिए बच्चे को ख़ुद अपने हाथों से कार्य करना होगा। यह प्रक्रिया बच्चे के शरीर की विभिन्न इंद्रियों को भी सक्रिय रहने के अवसर देती है। बच्चा अपने स्तर पर कुछ रचे और उस रचने के दौरान वह जिन प्रक्रियाओं से गुज़रे उनमें से ज्ञान का अर्जन करे। यदि बच्चे को कुछ रचने का अवसर दिया जाता है तो रटंत शिक्षा से छुट्टी पाई जा सकती है। बच्चों को ज्ञान का निर्माता मानें। रचनात्मक परिप्रेक्ष्य में सीखना ज्ञान के निर्माण की एक प्रक्रिया है। पूछताछ, अन्वेषण, प्रश्न पूछना, वाद–विवाद, व्यावहारिक प्रयोग व ऐसा चिंतन जिससे सिद्धांत बन सके और विचार/स्थितियों की रचना हो सके ये सभी बच्चों की सक्रिय व्यस्तता को सुनिश्चित करते हैं। बच्चों को ऐसे अवसर प्रदान किए जा रहे हैं कि वह प्रश्न पूछकर, चर्चा एवं चिंतन कर अवधारणाओं को आत्मसात् कर सके।

सीखने की प्रक्रिया का अभिन्न अंग है आस–पास के वातावरण, प्रकृति, चीज़ों व लोगों से कार्य व भाषा दोनों के माध्यम से अंतःक्रिया करना। बच्चे का समुदाय और उसका स्थानीय वातावरण सीखने में अहम भूमिका अदा करते हैं। परिवेश के साथ अंतःक्रिया करके ही बच्चा ज्ञान सृजित करता है और जीवन में सार्थकता पाता है। हालांकि पाठ्यपुस्तकों की संकल्पना और शिक्षा–शास्त्रीय व्यवहार में हमेशा से ही इस समझ की अवहेलना की गई है। बुनियादी शिक्षा को प्रासंगिक बनाने का अर्थ यही है कि सीखने को बच्चे के परिवेश से जोड़ा जाए। और स्कूल तथा बच्चे के प्राकृतिक और सामाजिक वातावरण और स्कूल के बीच की सीमा रेखा को कमज़ोर किया जाए। यह केवल इसलिए नहीं कि अपने परिवेश में बच्चों का अपना अनुभव ज्ञान के क्षेत्र में प्रवेश का बेहतर माध्यम होता है बल्कि इसीलिए भी कि ज्ञान का मतलब ही दुनिया से जुड़ना है।

बुनियादी शिक्षा के मूल में जो तथ्य है वह यह कि शिक्षा प्राप्त करते हुए बच्चे के हाथ (Hand), दिमाग (Head) एवं दिल (Heart) तीनों की भागीदारी हो। हाथों से बच्चा कार्य करता है। अतः बच्चे को हाथों से कार्य करने के अवसर मिले तो हस्तकौशल का विकास होगा और किसी चीज़ का सृजन कर सकेगा। इसी प्रकार से बच्चे के पास सोचने के लिए दिमाग़ है। जब बच्चा हाथों से कार्य करेगा तो उसके बारे में सोचने की प्रक्रिया निरंतर चलती रहेगी। इसी प्रकार से जब वह अपनी दिलचस्पी का कार्य करेगा तो उसका भावनात्मक जुड़ाव होगा। इस तरह से बुनियादी शिक्षा बच्चे के दिल, दिमाग़ और हाथ इन तीनों के उपयोग और उनके विकास की पहल करती है। ज़ाहिर है कि बच्चा हाथ से कार्य करेगा तो उसका शारीरिक विकास भी होगा।

बुनियादी शिक्षा के इस पहलू को पकड़कर हम बाक़ी के आयामों को अपनाने की दिशा में भी आगे बढ़ने में सफल हुए हैं। जब बच्चे को हाथ से चीज़ का सृजन करना है तो उसको कई प्रक्रियाओं से गुज़रना होगा। बच्चा कार्य करते हुए अपने परिवेश, समाज से अंतःक्रिया करता है। जब वह कार्य करता है तो समूहभावना का विकास होता है।

इस प्रकार से बच्चा शिक्षा प्राप्त करते हुए नैतिक मूल्यों की सीख भी सही अर्थों में अपने आचरण में उतारता है। बुनियादी स्कूल में कार्य करते हुए हमने अर्थपूर्ण शिक्षा के लक्ष्यों को हासिल करने में बुनियादी शिक्षा को एक हथियार के रूप में अपनाया है। जब बच्चा कार्य करता है तो उसके मन में शांति के भाव पैदा होते हैं। अहिंसा से जुड़े हुए भाव होते हैं। उसमें समस्याओं से जूझने और उनको हल करने की क्षमता का विकास भी होता है। बुनियादी शिक्षा को हु बहू लागू करने के बजाए आज के संदर्भ में पुनर्भाषीकरण का प्रयास किया गया। इस कार्य को चरणबद्ध तरीक़े से समझकर अपनाने का प्रयास किया गया।

हमने बुनियादी शिक्षा के माध्यम से इस सवाल पर समझ बनाने का प्रयास किया कि आख़िर शिक्षा क्या है? आज़ादी के बाद से ही इस सवाल पर काफ़ी चर्चाएं होती रही हैं। इस सवाल को बुनियादी शिक्षा के दायरे में रखकर सोचने का प्रयास किया है।



प्राप्त करते हुए बच्चे के हाथ

वर्तमान हालातों में जब बच्चा बुनियादी स्कूल से शिक्षा पाकर बाहर निकलेगा तो उसमें विकास की एक समझ होगी। उसमें भागीदारी की भावना होगी। टीम भावना का विकास होगा जिसमें श्रम के प्रति सम्मान भी समाया होगा। बच्चों में आत्मविश्वास का विकास होगा। बच्चों में हाथों से किए जानेवाले कामों के माध्यम से कौशलों का विकास करना और उत्पादक काम करना शिक्षा का अहम मक़सद है।

हमने यह भी समझा है कि उत्पादक कामों से शिक्षा का रिश्ता दूर होता जा रहा है और बाबूगिरी जैसे काम की ओर रुझान बढ़ता जा रहा है। एक आम स्कूल बच्चों को सुनहरे अवसर उपलब्ध कराने में असमर्थ पाता है। बुनियादी शिक्षा के माध्यम से हम शिक्षा को अर्थपूर्ण शिक्षा के दायरे में लाना चाहते हैं। इसमें यह भी शामिल है कि समाज की स्कूल में भागीदारी बने।

बुनियादी स्कूल में शिक्षा के साथ–साथ हम कुछ उद्योगों के माध्यम से बच्चों को अर्थव्यवस्था आदि के बारे में समझ विकसित करना चाहते हैं। साथ ही इन उद्योगों के माध्यम से बच्चों में हुनर का विकास होगा जिससे वे सक्षम बन सकेंगे।

दूसरे चरण में स्कूल के दायरे को अर्थपूर्ण शिक्षा के दायरे में व्यापक बनाना और शिक्षा को संस्कृति, समाज और सच्चाइयों से जोड़ने का प्रयास किया गया। परियोजना के तीसरे चरण में बुनियादी शिक्षा के दायरे में जो कुछ भी अनुभव अर्जित किए हैं उनका लोकव्यापीकरण करने का प्रयास किया जा रहा है। अपने राज्य की प्रशिक्षण संस्थाओं के साथ, अन्य स्कूलों के साथ बुनियादी शिक्षा को अपनाने के लिए प्रेरित किया जा रहा है।

## बुनियादी शिक्षा : भ्रम एवं समस्याएं

बुनियादी शिक्षा को लेकर कुछ भ्रम रहे हैं। और ये भ्रम शिक्षाशास्त्रियों से लेकर शिक्षक और प्रबंधकों तक में व्याप्त रहे हैं। वास्तव में इन भ्रमों के चलते भी बुनियादी शिक्षा सही अर्थों में अपना स्थान नहीं बना पाई।

बुनियादी शिक्षा को लेकर जो भ्रम हैं, उनका ज़िक्र करना प्रासंगिक होगा।

1. बुनियादी शिक्षा का एक अहम पहलू है काम को केंद्र में रखकर शिक्षा की रचना करना। इस पहलू का असली स्वरूप प्रारंभ से गांधी के समय से ही विकृत हो गया। कार्य को केंद्र में रखकर ज्ञान की रचना करने के बजाए निरर्थक गतिविधियां कराई जाने लगीं। कहीं–कहीं तो काम को ही बुनियादी शिक्षा मान लिया गया।

2. बुनियादी शिक्षा केवल रोज़गार की शिक्षा नहीं है। यह एक बड़ा भारी भ्रम है। स्कूल में उद्योग आदि की स्थापना करना यह मक़सद नहीं कि उनको सीखकर छात्र बाद में रोज़गार अर्जित कर सकें। दरअसल उद्योग तो शिक्षा का एक माध्यम है।

3. बुनियादी शिक्षा गांववालों के लिए बनी है। यह भी सही नहीं है। इस भ्रम के चलते बुनियादी शिक्षा को लेकर ग्रामीण रहवासियों को यह अहसास होता है कि यह शिक्षा तो छात्रों को कामगार बनाने तक ही सीमित है। शहरी बच्चों को अलग प्रकार की शिक्षा मिलने के कारण वे समाज में अलग स्थान पाते हैं। और इसी समझ के चलते शहरी और ग्रामीण लोग बुनियादी शिक्षा को अपनाने के बदले इससे दूरी बनाने की कोशिश करने लगे।

4. बुनियादी शिक्षा जहां–जहां भी संचालित होती रही वे सब के सब लकीर के फ़क़ीर बने रहे। बुनियादी शिक्षा को अपने क्षेत्र की परिस्थितियों के अनुकूल ढालने के बदले घिसी–पिटी गतिविधियों को संचालित किया जाने लगा।

## बुनियादी शिक्षा : आगे क्या?

यह तो हम स्पष्ट रूप से समझ चुके हैं कि गांधी के विचारों को अपनाने की और इनके लोकव्यापीकरण की महती आवश्यकता है। गांधी के शिक्षा के विचारों को हमें आगे बढ़ाने के लिए एक सशक्त मंच की आवश्यकता होगी। यह मंच अब तक बुनियादी शिक्षा के तहत किए गए कार्यों की नींव पर ही खड़ा किया जाएगा।

गांधी के शिक्षा के विचारों के अनुरूप शिक्षा का ढांचा खड़ा करने के लिए गांधीवादी शिक्षा केंद्र बनाया जा रहा है। गांधीवादी शिक्षा केंद्र के उद्देश्य निम्नलिखित हैं –

- गांधी शिक्षा अध्ययन केन्द्र की स्थापना करना। यह केंद्र एक सेटेलाइट की भांति कार्य करेगा। इस केन्द्र के माध्यम से गांधी शिक्षा विचार को समझते हुए इसको सर्वसाधारण की शिक्षा बनाना।
- गांधीवादी शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय की स्थापना करना जो बुनियादी तालीम में दक्ष शिक्षक तैयार कर सकें। प्रशिक्षण के बाद ये शिक्षक सामान्य विद्यालयों में जाकर बच्चों को सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में बुनियादी शिक्षा विचार के तत्त्वों और उसके आयामों को शामिल कर शिक्षण में समर्थ हों।
- अध्ययन केन्द्र में एक ऐसा पुस्तकालय बनाना जिसमें गांधी विचार से संबन्धित सम्पूर्ण सामग्री, साहित्य और विविध दस्तावेज़ उपलब्ध हो और उसका देशभर के शिक्षक, विद्यार्थी और शोधकर्ता आदि उपयोग कर सकें और पढ़ सकें।
- देश में उपलब्ध बुनियादी शिक्षा के साहित्य व दस्तावेज़ का गवेषणात्मक अध्ययन कर विश्लेषण करना और उसको एक सार्थक स्वरूप प्रदान करना। शिक्षा से जुड़े विभिन्न मुद्दों पर क्रियात्मक शोध कार्य करना। विद्यालय के शिक्षकों को शोध कार्य करने के लिए प्रेरित करना।
- अर्थपूर्ण अथवा जीवनोपयोगी विद्यालयीन शिक्षा को विकसित करने की दिशा में काम करना तथा इस अवधारणा को डाइट, एस.सी.ई.आर.टी., शिक्षक महाविद्यालयों आदि के साथ बांटना और उनके साथ अंतःक्रिया करना।
- विद्या भवन बेसिक स्कूल को बुनियादी शिक्षा के संदर्भ में एक ऐसे प्रादर्श स्कूल का दर्जा देना जो बच्चों की शिक्षा में न केवल हाथों के कामों का शिक्षण प्रदान करता हो बल्कि बुनियादी शिक्षा दर्शन और उसके आयामों को व्यावहारिक रूप देने के लिए देश के सामने एक मिसाल हो।
- बुनियादी शिक्षा के संदर्भ में बच्चों व शिक्षकों के लिए पठन–पाठन की सामग्री तैयार करना जो उनके शिक्षण में मदद कर सके।
- सीखने–सिखाने के संदर्भ में गंभीर मुद्दों पर राष्ट्रीय स्तर पर चर्चा एवं विमर्श करना और उसको शिक्षा में काम करनेवाले लोगों के साथ बांटना।

---

**के. आर. शर्मा,** विद्या भवन शिक्षा संदर्भ केंद्र उदयपुर में कार्यरत। बुनियादी शिक्षा : एक नई कोशिश के संपादक।

कार्टून : आर. के. लक्ष्मण

## चलते-चलते

शिक्षा की संस्थानों में चाहे वह स्कूल, शिक्षक प्रशिक्षण, महाविद्यालय या फिर कोई ब्लॉक स्तर पर कार्यालय हो, हर कहीं पर किसी समारोह के आयोजन पर पधारे महानुभावों का स्वागत हार–मालाओं से किया जाता हैं। इस दौरान अतिथि की ताकत (?) को मालाओं के वजन से आंका जा सकता है। इतना ही नहीं लंबे–लंबे उबाऊ भाषण दिए जाते हैं जिससे उन बच्चों और युवाओं का कोई सरोकार नहीं होता।

बहराहाल, मूल सवाल यह है कि स्वागत के इन तरीकों पर आपकी क्या राय हैं? क्या इन तरीकों में बदलाव होना चाहिए? इस विषय पर आपके सुझाव, विचार हम आमंत्रित करते हैं। कृपया आप हमें बेझिझक लिख भेजें।

संपादक

# श्रमदान

बात उन दिनों की है जब सेवाग्राम आश्रम बन रहा था। गांधीजी वहां अकेले झोंपड़ी डाल कर रहते थे। बाक़ी लोग रोजाना वर्धा से पांच मील पैदल चलकर आते थे। वहां जाने का रास्ता बहुत ख़राब था– ऊबड़–खाबड़ और ऊंचा नीचा। एक दिन कुछ लोग गांधीजी से बोले– ''बापू, यदि आप एक चिट्ठी प्रशासन को लिख दें तो यहां का रास्ता ठीक हो जाएगा।''

गांधीजी ने कहा– ''यह काम मैं नहीं करूंगा। वहां पर रास्ता बग़ैर प्रशासन की मदद से भी ठीक हो सकता है।'' एक ने पूछा– ''कैसे? गांधीजी ने उत्तर दिया– ''श्रमदान करने से। कल से सभी लोग वर्धा से आते समय इधर–उधर बिखरे पड़े दो–दो पत्थर उठाकर लेते आएं और रास्ते में बिछाते जाएं। अगले दिन से काम शुरू हो गया। लोग पत्थरों को बिछाते और गांधीजी उसे समतल कर देते।

गांधीजी के प्रशंसकों में बृजकृष्ण चांदीवाल भी थे। उनका शरीर भारी–भरकम था। एक दिन वे भी आश्रम देखने वर्धा पहुंच गए। उन्हें मालूम हुआ कि सेवाग्राम तक पांच मील का सफ़र ऊबड़–खाबड़ रास्ते से पैदल ही तय करना होगा तो उनको पसीना आ गया। किसी तरह वे आश्रम तक पहुंचे। गांधीजी ने उन्हें आदरपूर्वक बिठाया। चांदीवाल भी झुंझलाकर बोले– ''मेरा स्वागत करना छोड़िए और यह बताइए कि क्या दो–दो पत्थरों से रास्ता बन जाएगा? यदि आप प्रशासन से काम नहीं करवा सकते तो बताइए इस काम के लिए आपको कितना धन चाहिए? मैं दूंगा।''

गांधीजी मुस्करा कर बोले– ''अरे भाई! आप ग़ुस्सा क्यों करते हैं? मुझे आपके दान की ज़रूरत तो है, लेकिन धनदान की नहीं बल्कि श्रमदान की। आप तो जानते ही हैं कि बूंद–बूंद से समुद्र भर जाता है। आइए, आप भी इस काम में हमारे साथ लग जाइए। इसके तीन फ़ायदे होंगे– आश्रम ठीक होगा, आपका धन बचेगा और आपकी तोंद पिचककर अंदर चली जाएगी, जिससे आप हमेशा के लिए नीरोग हो जाएंगे।

गांधीजी का इतना कहना था कि चांदीवाल जी का ग़ुस्सा शांत हो गया और वे ठहाका मारकर हंस पड़े।

# बाड़े का अनार

जब मुनिया अपनी पहली की किताब में
अ से अनार बोलती है तो
वह अनार के हिज्जे बोलती है
वह सोच न ही पाती।
जब मुनिया अपने पापा के साथ होती है तो
बाड़े में लगे अनार का लंबा बयां करती है
मुनिया अनार के सूर्ख लाल फूलों के चित्र बनाती है
वह बताती है अनार की पत्तियां छोटी होती हैं
अनार के फल को वह हाथों और आंखों के
इशारों से बख़ूबी बताती है
मुनिया ने अनार पर बुलबुल को देखा है
वह बुलबुल और अनार के रिश्ते की लंबी बातें करती है
बुलबुल के टोकनीनुमा घोंसले को अनार की
फांकदार डाली में ही तो बुनते हुए देखा था
अनार के कांटे में उसका कुर्ता भी अटका था
अनार के फल को तोड़ते हुए ही तो कांटा चुभा था
पांच साल की मुनिया
आम और इमली के बारे में भी बतियाती है
स्कूल की किताबवाले अनार, आम, इमली
मुनिया को बाड़े के अनार की बात करने से रोकते हैं

के. आर. शर्मा